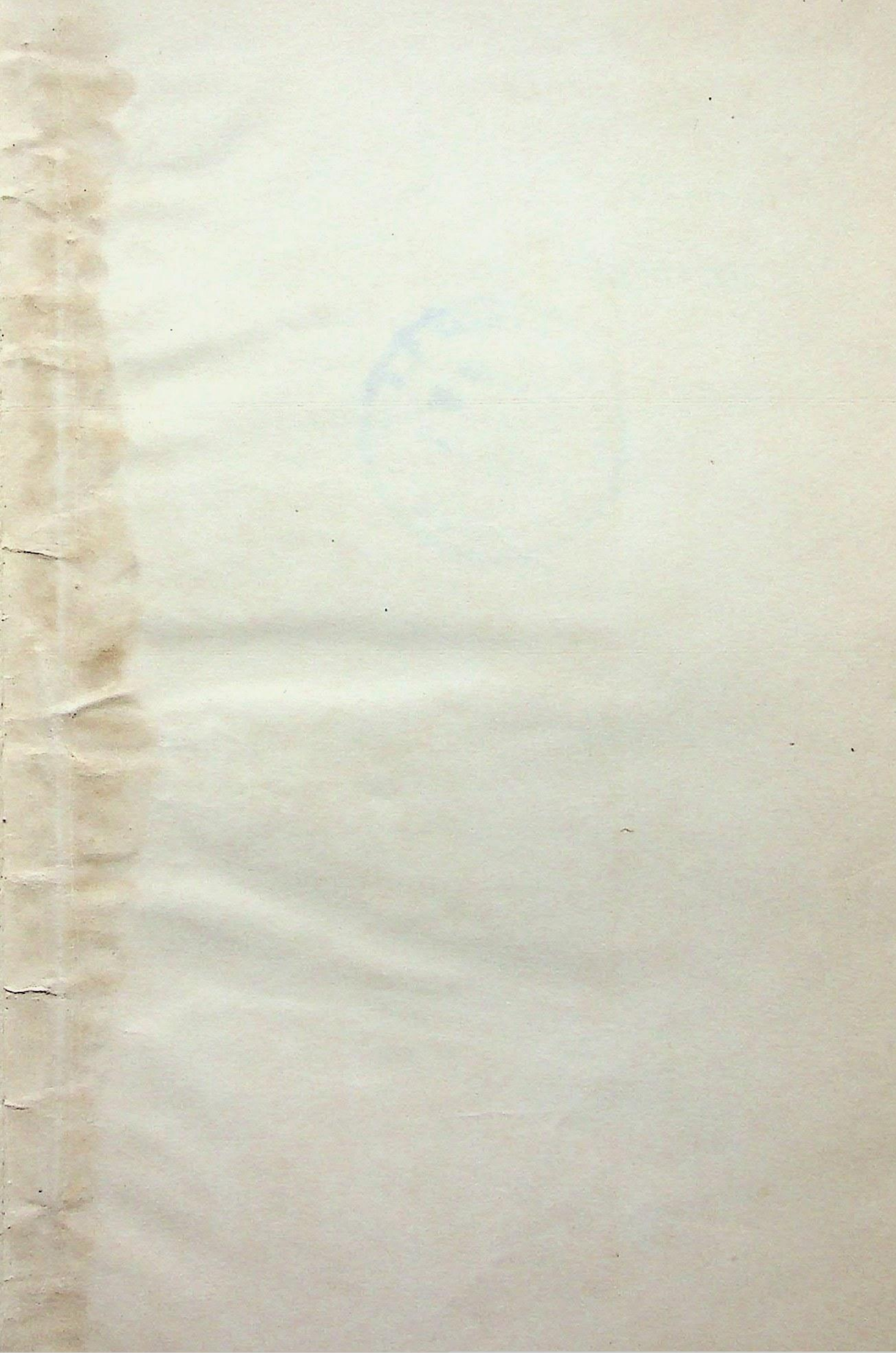
सम्पादक
रमेश मेहता

हमारा साहित्य

1973

जे० एण्ड के० अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, जम्मू





हमारा साहित्य



1973

सम्पादक :
रमेश मेहता

जे० एण्ड के०
अकैडमी आफ आर्ट,
कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़
जम्मू

प्रकाशक

मुहम्मद यूसुफ़ टेंग
सचिव
जे० एण्ड के० अकैडमी आफ आर्ट
कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, जम्मू।



१९७२
प्रथम संस्करण ५०० : मूल्य 15.50 रुपये

मुद्रक
स्पेसएज़ प्रिण्टर्ज़,
म्युनिसिपल मार्किट,
महेशी गेट,
जम्मू

आमुख

हमारा साहित्य (1973) आपके हाथों में सौंपते हुए हमें अतीव प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। प्रस्तुत संकलन जहां एक ओर जम्मू-कश्मीर में 1973 वर्ष में लिखे गए श्रेष्ठ साहित्य का परिचय प्रस्तुत करता है, वहीं विषय की दृष्टि से विविधता का परिचायक भी है। हमने नई और पुरानी पीढ़ियों के संघर्ष, उनकी सीमाओं तथा उनकी उपलब्धियों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करने का साहस किया है। इस संदर्भ में हमारी भूमिका केवल उस सेतु की सी रही है जो विभिन्न विचार-धाराओं, वादों और मत-मतांतरों में समन्वय स्थापित करने का साधन होना है। बाकी की बात तो प्रस्तुत संकलन स्वयं कहेगा—

—रमेश मेहता

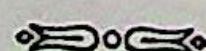
अनुक्रम

●

वैचारिकी—

कहानियां —

काव्य-मञ्जरी —



वैचारिकी

दीनानाथ 'नादिम' :
प्रगतिवादोत्तर काव्य - दिशाएं

-- शशि शेखर तोषखानी

'तरक्कीपसंदी' का आवेश एक दशक से कुछ अधिक समय तक कश्मीर के बौद्धिक-सांस्कृतिक वातावरण को उत्तेजित-आतंकित करने के बाद सन् साठ के आस-पास ठण्डा पड़ गया और कश्मीरी कविता एक ऐसे मोड़ पर आ पहुंची जहाँ से सब कवियों को अपने लिए नयी राहें खोजने को विवश होना पड़ा। मार्क्सीय जीवन-दृष्टि से प्रेरित होकर जिन्होंने सतही राजनैतिक आक्रोश की कविता लिखी उन्होंने अब अपनी ही स्वीकृत मान्यताओं और आदर्शों के आगे प्रश्न-चिह्न लगाना शुरू कर दिया। यह स्थिति कुछ तो स्थानीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उभर आ रही नयी परिस्थितियों का और कुछ धीरे - धीरे जोर पकड़ रहे इस बोध का परिणाम थी कि मानवीय यथार्थ को विचारधारा द्वारा प्रस्तुत अतिसरलीकृत फारमूलों में बन्द नहीं किया जा सकता, उसे सीधे अनुभव के माध्यम से ही जाना जा सकता है। प्रश्न से उत्तर तक की वास्तविक यात्रा तय किये बगैर इन कवियों को जो बने-बनाये समाधान थमा दिये गये थे, वे अधिक समय तक उन्हें संतुष्ट न कर सके।

"क्रांति" एक ऐसा सम्मोहनकारी शब्द था जिससे आकर्षित

होकर कश्मीर के वामपंथी बुद्धिजीवी एक साम्यवादी यूटोपिया के रंगीन सपनों को साकार करने को आकुल हो रहे थे। तरक्की-पसंद शायर अपनी कविताओं में उसके लिए अपना "लाल-लाल उष्ण-उष्ण रक्त" बहाने की ऊर्ध्वबाहु घोषणाएं कर चुके थे। पर इस "लाल-क्रांति" की वास्तविकता जब उघड़-उघड़ कर सामने आने लगी तो अधिकांश कवियों को इस खतरे का आभास हो गया कि वे मनुष्य की गहरी संवेदनाओं से रचनाशीलता के स्तर पर कटते जा रहे हैं। मोहभंग की एक अत्यंत पीड़ाजनक स्थिति से इन कवियों को गुज़रना पड़ा और सभी ने उसे अपने-अपने स्तर पर झेला। प्रचारवादी मुहावरे में रचित अपनी ही कृतियों के प्रति उन में एक प्रकार का लज्जाबोध जाग्रत हुआ—विशेषकर रहमान राही में—और वे अपनी सर्जनात्मक आकुलता के लिए अधिक सार्थक संदर्भों की तलाश में लग गये। आस्था के इस तीव्र क्षरण में भी जिनकी वैचारिक आधारभूमि नहीं खिसकी, उन निष्ठावानों में सब से अधिक दृढ़ रहे प्रगतिवादी-युग के सबसे सशक्त और सर्वाधिक मुखर कवि दीनानाथ 'नादिम'। लेकिन उनकी सम्पूर्ण वैचारिक निष्ठा और क्रांति के प्रति उनकी गहरी प्रतिबद्धता भी कश्मीरी कविता के उस युग को लौटा न सकी जिसमें कविता और राजनैतिक मतवाद एक ही मंच पर स्वर में स्वर मिलाते थे।

मायकोव्स्को की भांति नादिम एक नयी क्रांति के वैतालिक और सिपाही के रूप में अपना कवि-व्यक्तित्व प्रतिष्ठित कर चुके थे, पर रूसी कवि की भांति उन्होंने मोह-भंग के दर्द को उस तीव्रता से नहीं सहा। वे उस जुलूस में लगभग अकेले ही रह गये जिसमें अभी कल तक उनके सहयोगी जय के नारे लगा रहे थे। बीते हुए युग के प्रति उनके मन में सतत एक नॉस्टाल्जिया बना रहा और उस युग में रचित अपनी कविताओं को वे किसी कदर त्याज्य या तुच्छ मानने को तैयार नहीं हुए, न उनके प्रति राही की भाँति उन्होंने किसी प्रकार की क्षमा-याचना का स्वर ही अपनाया। 'नादिम' की दृष्टि में इन कविताओं में युग-विशेष की विचार-दिशाओं, प्रेरणाओं तथा जीवन-स्थितियों का अंकन है इन सब की सब कविताओं को गुणात्मक स्तर पर या कला-संचेतना की दृष्टि से हेय साबित करने का प्रयत्न पूर्वाग्रह और अविवेक का परिचय देना है। जहां तक

नादिम की अपनी रचनाओं का सम्बन्ध है यह बात बहुत हद तक गलत नहीं है। यद्यपि नारेबाज़ी और मतवादी-आग्रहों के आरोप से उन्हें मुक्त नहीं किया जा सकता—यह सब तो उनमें एक खिजा देने वाली सीमा तक मौजूद था—फिर भी सब बातों के बावजूद इस काल में रचित नादिम की ऐसी अनेक रचनाएं हैं जिन में उन्होंने उपलब्धि के शिखरों को छुआ है। कहा जा सकता है कि प्रगतिवादी दौर में ही नादिम कश्मीरी कविता को अपना सर्वश्रेष्ठ दे चुके थे।

नादिम की सब से बड़ी देन यह रही है कि उन्होंने अभिव्यक्ति के पुराने जड़ सांचों को तोड़ कर समसामयिक जीवन स्थितियों को उद्घाटित करने में समर्थ एक नया रूप-शिल्प कश्मीरी कविता को प्रदान किया। मध्ययुगीन मानसिकता से सम्बद्ध फारसी तथा उर्दू शायरी से उधार लिये "साज़ - गुदाज़ - परवाज़" के लटकों - झटकों तथा शराबनोशी व "हुस्नोइश्क" को लेकर बारीकख्याली और नाज़ुकबयानी के नाम पर हज़ारों बार दोहरायी गयी प्राणहीन शब्दावली, घिसे हुए उपमान और रूढ़ि-जर्जर प्रतीक की जकड़न ने उसे इस कदर शक्तिहीन और पंगु बना दिया था कि नयी भाव-स्थितियों और मानवीय यथार्थ के नये संदर्भों का वह स्पर्श भी नहीं कर पा रही थी। महजूर और यहां तक कि आज़ाद जैसे कवियों में भी परम्परागत प्रभावों की अनुगूंज बनी रही - शिल्प और संवेदना दोनों स्तरों पर। गतिहीनता की इस सड़ान्ध को नादिम ने गज़ल जैसे परम्परित काव्यरूप के स्थान पर कश्मीरी में पहली बार मुक्त छन्द का प्रयोग करके दूर किया, जिससे सृजनात्मकता की अवरुद्ध शक्तियाँ मुक्त हुईं। कश्मीरी कविता के इतिहास में यह एक क्रांतिकारी घटना थी।

सामन्ती और पूंजीवादी संस्कृति के आश्रय में पनप रहे मूल्यों और विकृतियों के प्रति उस समय के कश्मीरी बुद्धिजीवी वर्ग में जो विक्षोभ था उसकी तीव्रता इतनी अधिक थी कि साहित्य के स्तर पर उसकी अभिव्यक्ति इश्किया गज़लों और तस्सवुफ का रहस्यजाल बुनने वाली नज़्मों द्वारा स्थापित भाषा के रूढ़ तथा जड़ ढांचे के अन्दर सम्भव नहीं थी। नादिम ने इस ढांचे को एक झटके के साथ तोड़ डाला और कश्मीरी भाषा की शक्ति और सम्भावना के विस्तार के लिए नयी विकास-दिशाओं की ओर इंगित किया।

यह नादिम की कश्मीरी कविता को दूसरी महत्त्वपूर्ण देन थी। वस्तुत: नये काव्य को नया रूप-शिल्प और समर्थ भाषा प्रदान करने की दिशा में नादिम की सतत प्रयोगशीलता ही उन्हें कश्मीरी के शीर्षस्थ समसामयिक कवि के रूप में उनकी पहचान स्थिर करती है। इस क्षेत्र में नादिम की शक्ति का एहसास उनकी प्रगतिवाद-प्रेरित रचनाओं में सर्वाधिक होता है। नादिम की काव्य-भाषा स्मृति में तैरते हुए लोकगीतों की कड़ियों की मिठास लिये है और वास्तविक बोलचाल की भाषा के अधिक निकट होने के कारण प्राणवान भी, यद्यपि राजनैतिक मंच के उपयुक्त शब्दावली के कारण उसमें रेह्टरिक का सा प्रभाव भी मिलता है। इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि कवि ने कश्मीरी काव्य-भाषा को एक नयी भंगिमा दी, उसका मुहावरा बदल डाला। एक समूची कवि-पीढ़ी उनके प्रयोगों से गहराई से प्रभावित हुई।

सन् ६० से पूर्व लिखी गयी नादिम की राजनीतिक कविताओं के विषय में आज चाहे जो कहा जाए, इससे कौन इन्कार कर सकता है कि उनमें सृजनात्मकता का एक ऐसा उफ़ान था जो अपने साथ जीवन से लिये गये अछूते और सशक्त बिम्बों तथा नये और मौलिक प्रतीकों का एक उत्तेजक सिलसिला ले आया। राजनैतिक आशयों को संकेतित करने वाले कुछेक प्रतीकों का प्रयोग महजूर और आज़ाद भी कर चुके थे, पर नादिम के प्रयोग गतानुगामी काव्य-रुचि के लिए एक तीखा प्रहार साबित हुए वे एक परिवर्तित भाव-बोध तथा कला संचेतना के परिचायक थे जिन्होंने समसामयिक लेखन को मध्य-युगीन संस्कारिता से एकदम अलग कर दिया। नादिम ने जब लिखा—

चपाती-सा निकल आया है चांद
....
या फिर उस खोटे रुपये सा
थकी मजूरिन को जो छल से
थमा दिया हो
किसी धूर्त्त ठेकेदार ने !

तो यह कश्मीरी कविता के लिए एक सर्वथा नवीन बिम्ब था। बीते

युग के रीते उपमानों के स्थान पर चांद को फूली चपाती या खोटे रुपये-सा कहना संवेदना और अभिव्यक्ति के नये और अधिक सक्षम स्तरों का स्पर्श था। नादिम की कविता में बुभुक्षा के विश्वव्यापी संत्रास और आर्थिक सामाजिक समस्याओं के दुर्निवार भार के नीचे दबे आदमी की पीड़ा के बिम्ब विशेष रूप से अपना प्रभाव छोड़ जाते हैं। रहस्यवादी उलटबांसियों तथा हुस्नोइश्क की गत-अभ्यास शेष और जीवन की ठोस वास्तविकताओं से सर्वथा असपृक्त शायरी से उत्पन्न धुंध से नादिम कश्मीरी कविता को निकाल लाये और उसे जनाभिमुख किया—यह एक कवि के रूप में उनकी सब से महत्त्वपूर्ण सफलता थी। नादिम सामान्य जनता को भीड़ कहकर बिदकने वाले कवि नहीं; गार्सिया लोर्का की भांति उन्हें अपने जन्म-स्थान कश्मीर की मिट्टी से, हवा से, वन-पर्वत-नदियों से, फूलों से, लोगों से गहरा अनुराग है। इसी अनुराग की रंगच्छायाएं उनकी प्रगतिवादी कही जाने वाली कविताओं में बिखरी पड़ी हैं। इस बात को समझे बिना नादिम की राजनैतिक कविताओं को कोरी प्रचारवादी रचनाएं कह कर उड़ाना कवि के साथ अन्याय होगा। यह नहीं कि प्रगतिवादी युग की उनकी कविता में नारेबाजी और प्रगतिवादियों का सुपरिचित वाग्जाल नहीं। यह सच तो है ही और कहीं-कहीं अति की सीमा तक—विशेष कर उन कविताओं में जिनमें कश्मीर को अमरीका के साम्राज्यवादी "षडयन्त्र" तथा "युद्ध - लिप्सा" का शिकार दिखलाया गया है अथवा चीनी क्रांति-जन्य यूफोरिआ के प्रभाव में 'साम्राज्यवादी' शक्तियों को ललकारा गया है। पर नादिम के प्रगतिवादी लेखन का सही मूल्यांकन तभी हो सकता है जब उन्हें यह श्रेय—जिसके वे पूरे हकदार हैं—देने में हिचक न दिखलायी जाए कि उन्होंने कश्मीरी कविता की विषय-भूमि को बदल डाला, उसके रूप-शिल्प और भाषा को एक नयी सामर्थ्य प्रदान की।

प्रगतिवादी काव्य-युग की समाप्ति पर नादिम एक ऐसे शून्य में खड़े प्रतीत होते हैं जिसे पाने के लिए उनके पास विशेष कुछ भी न था। वामपंथी विचारधारा में उनकी आस्था अब भी अक्षुण्ण थी, पर वह मोर्चाबन्दी ही टूट गयी थी जिसमें वे कविता का एक हथियार के रूप में प्रयोग करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिए

हुए थे। फिर एक कवि के रूप में वे इतने सरल-बुद्धि भी न थे कि उन्हें कविता के प्रति जागरूक पाठक की बदली हुई मांग का आभास भी न होता। ऐसी स्थिति में अपने को दोहराना भर इस बात का परिचायक होता कि कवि चुक गया है, उसकी सृजनात्मकता का स्रोत सूख गया है। नादिम के लिए अभिव्यक्ति का यह ऐसा संकट था जिससे जूझने में उनकी रचनाशक्ति काफी क्षीण होती प्रतीत हुई। आधुनिक काव्य - चेतना को केवल शिल्पगत आंदोलन मानकर वे कुछ और प्रयोग करने की दिशा में बढ़े, पर वर्षों तक कुछेक व्यंग कविताओं को छोड़ कर, कथ्य की दृष्टि से बेहद कमज़ोर और प्राणहीन रचनाओं के अतिरिक्त कुछ न दे सके। आधुनिक कविता की मूल संवेदना के बाहरी घेरे के गिर्द कुछ देर चक्कर काटने के बावजूद वे उसके मर्म को तो नहीं पा सके, कुछ नया देने की झोंक में केवल रूपवाद में उलझ कर रह गये। अनुप्रास और शब्द - संगीत द्वारा प्रभाव उत्पन्न करने की प्रवृत्ति उन में पहले भी मौजूद थी, अब वह जैसे संक्रामक हो गयी। किसी आंतरिक बाध्यता अथवा कथ्य के गम्भीर दबाव का अनिवार्य परिणाम न होने के कारण नादिम के ये रूपवादी प्रयोग उद्देश्यहीन श्रम मात्र थे। "लक्चि छु लक्चुन" (लक्खी के मुखड़े पर तिल है) जैसी कविता को इस प्रवृत्ति के एक प्रतिनिधि उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है। समूची कविता में कवि यह कल्पना करता हुआ कि लक्खी के मुख पर किस स्थान पर तिल कैसा सुन्दर लगेगा अनुप्रास - बहुल शब्दावली में उपमानों के ढेर लगा देता है!

इसी काल में नादिम ने एक ऐसी शैली का प्रयोग अपनी कुछेक कविताओं में किया जिसे वे "चेतना प्रवाह" की संज्ञा देना पसंद करते हैं। चेतनाप्रवाह शैली में कविता लिखने का उनका यह दावा कुछ चौंकाने वाला है क्योंकि इसका उपयोग उपन्यास और कहानी में हुआ है। वर्तमान शताब्दी के दूसरे-तीसरे दशक में मनोवैज्ञानिक उपन्यास की इस विशिष्ट शैली का विकास अवचेतन के सत्यों, उसके चरित्र के आन्तरिक स्वरूप के उद्घाटन के लिए डॉरोथी रिचर्डसन, जेम्स ज्वाइस, वर्जीनिया वुल्फ आदि उपन्यासकारों ने किया। इन उपन्यासकारों ने व्यक्तित्व की क्रमबद्धता

अथवा एकता की धारणा को खंडित कर दिया और मनुष्य को विभिन्न मनोवैज्ञानिक क्षेत्रों में जीवित अनेक मनुष्यों की एक शृंखला के रूप में परिभाषित किया। व्यक्ति के अवचेतन के उलझे और असम्बद्ध सत्यों को उद्घाटित करने के लिए उन्होंने बिम्बों तथा प्रतीक-योजना का सहारा लिया और इस प्रकार अपनी कृतियों को काव्यात्मक संश्लिष्टता प्रदान की। कविता में नादिम ने चेतना के मानसिक प्रवाह को पकड़ने का प्रयास कैसे किया है, यह स्पष्ट नहीं है। इतना अवश्य है कि आंतरिक एकालाप अथव संलाप की शैली में नादिम ने किसी स्थिति विशेष को संकेतित किया है। इस संदर्भ में उनकी "नानद टचठव्यन" (मिश्री-माहुर) तथा कोठयदरबाज़प्यठ गर वाम (मेले से घर तक) आदि कविताओं का उल्लेख किया जा सकता है। यौन-प्रतीकों और बिम्बों की लम्बी योजना द्वारा "मिश्री माहुर" में अवैध यौन-सम्बन्धों के परिणामस्वरूप एक गरीब स्त्री के पुत्रवती होने की स्थिति को कवि ने लिया है और यह बताना चाहा है कि प्रेम का शारीरिक पक्ष जो किसी अन्य स्त्री के लिए "मिश्री" हो सकता है, इसके लिए "माहुर" क्यों कर सिद्ध हुआ है। केवल गरीब होने से उसका प्यार दूषित अथवा कलुषित नहीं हो जाता। वह स्त्री उतनी ही पवित्र है जितनी ईसा-जननी मरियम अथवा कुन्ती, उसका प्यार उतना ही मधुर और सुन्दर है जितना क्लियोपेट्रा का। उसका तथाकथित अवैध पुत्र ईसा-सा महान हो सकता है। पर यह सब सीधा कहने के बदले कवि ने गुह्य संकेतों का प्रयोग क्यों किया है, समझ नहीं आता। जहां तक प्रभाव का सम्बन्ध है, कविता बिल्कुल सपाट है।

"मेले से घर तक" शीर्षक कविता में मेले से अपनी मां के साथ लौट रहे एक बीमार बच्चे तथा उसकी मां की मन : स्थिति को काल्पनिक संलाप तथा आन्तरिक एकालाप के माध्यम से प्रकट किया गया है। मेले में बिक रहे खिलौनों तथा दृश्यों के प्रति बच्चे का सहज आकर्षण, नयी पाठ्य पुस्तकें और कापियां पाने की आतुरता—इस प्रकार की कोमल और सीधी रेखाओं द्वारा कवि ने शैशव के सरल सुख-स्वर्ग का चित्र अंकित किया है। एक अन्य

स्तर पर भी कविता का अर्थ उद्घाटित होता है। इस दूसरे अर्थ की पतली-क्षीण धारा बारीकी से देखने पर ही नज़र आती है। बीमार बच्चा रुग्ण-मना नयी पीढ़ी है जिसकी सामान्य इच्छाओं की पूर्त्ति भी वर्तमान आर्थिक, सामाजिक व्यवस्था में होना कठिन है। पुरानी पीढ़ी—जिसका प्रतीक मां है—उसे केवल आशीष दे सकती है, क्योंकि उसकी भी अपनी असमर्थताएं हैं, विवशताएं हैं। किन्तु यह अर्थ बहुत दूर तक समानान्तर नहीं जाता। केवल हाशियों में प्रकट होता है।

रूपवादी काव्य-प्रवृत्ति के गुरु एज़रा पाउण्ड ने प्रभावशाली बिम्ब - रचना को काव्य में सर्वाधिक महत्त्व दिया है। नादिम की प्रगतिवाद-युग के बाद की रूपवादी कविताओं में बिम्ब नये तो हैं किन्तु प्रभावशाली नहीं। उनमें भारतीय तथा पौराणिक मिथकों से लिये गये प्रतीकों का प्रयोग है, किन्तु इन प्रतीकों में समसामयिक मानवीय स्थिति को उद्घाटित करने वाले अर्थ नहीं उभरते।

नादिम की काव्य-यात्रा यदि इसी बिन्दु पर और अधिक देर रुक जाती तो इस आशंका का पैदा होना स्वाभाविक था कि एक कवि के रूप में उनकी सम्भावनाएं समाप्त हो गयी हैं। सौभाग्य से इधर कुछ वर्षों से वे इस दलदल से बाहर निकल आये हैं रूपवाद उनकी कविता की मूलभूमि न हो कर केवल एक भटकाव था। उनकी कविता में अब मानव-नियति से सम्बद्ध गहरे प्रश्नों की आकुलता अभिव्यक्त हो रही है। साहित्य में आधुनिकता को नादिम प्रगतिवाद का ही अगला कदम मानते हैं **और** स्वयं इस दिशा में प्रयोगशील होने का प्रयत्न कर रहे हैं। **इस** नये रचनात्मक उन्मेष में हम उन्हें एक ऐसे कवि के रूप में पाते हैं **जो** मूल्यहीनता के गहन अंधेरों से लड़ रहा है। "सुबह गाही" कविता में कवि इस अंधेरे की व्यापकता और भयंकरता से संत्रस्त प्रतीत होता है। मोटे कम्बल जैसा मानो वह तम सभी ओर से मानव-चेतना पर छा गया है :—

सियाह मोट चादराह हिश राथ खामोश !

लगता है कवि अपने लिए और सारी मानवता के लिए इस अंधेरे के

जबड़ों से मुक्ति का आश्वासन तलाशता है। इसीलिए उसने कविता के अन्त में अनेक प्रभात पाखियों को अपना आर्केस्ट्रा प्रस्तुत करते हुए दिखलाया है जिसकी धुन पर सवेरे की किरण नाच उठती है। शायद कवि के आशावादी संस्कार निःशेष नहीं हुए हैं और वह सुबह को अब भी एक सम्भावना मानता है।

"मकड़ी के जाले", "गर्दोगुबार", "आशंका", "दुर्घटनाएं" आदि कवि की कुछ नयी कविताओं में संवेदना के नये धरातल उभरते प्रतीत होते हैं। लगता है सैद्धान्तिक या रूमानी चश्मा उसकी आंखों से उतर गया है और अब वह ज़िन्दगी को सीधी और नंगी निगाहों से देख रहा है, उसकी विसंगतियों और विरूपताओं को परत-परत उघाड़ने का प्रयास कर रहा है। परिवेश से जूझते और टूटते आज के आदमी की पीड़ा और विवशता से, उसके संघर्ष से कवि अपने रचनाधर्म को गहरायी से जुड़ा पाता है।

"मकड़ी के जाले" शीर्षक कविता में कवि उस अंधेरे बन्द कमरे में झांकने का साहस करता है जहां धूल की मोटी परतें जमी हैं और सब में मकड़ी के जाले लटक रहे हैं। समय का सारा कूड़ा इस कमरे में इकट्ठा हो गया है और कला, दर्शन, विज्ञान के क्षेत्र में मनुष्य की उपलब्धियों को ढंके हुए है। नज़र जहां जाती है धूल की परतों से, मकड़ी के जालों से, कालिख से, फफूंद लगी दीवारों से टकराती है। इस धूल भरे अंधेरे से राहत पाने के लिए कवि चाहता है कि जाकर एक रोशनदान या खिड़की का एक पल्ला खोल दे जिससे ताजी हवा का एक झोंका भीतर आये और सभी मकड़ी के जालों को ढहा दे। कवि सोचता है कि शायद तब उसकी कलम भी मुक्त हो जाये और वह कुछ नया लिखे।

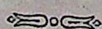
"गर्दोगुबार" शीर्षक कविता में भी चारों ओर उठ रहे धूल के बवण्डर में फंसे आज के आदमी की पीड़ा वर्णित है। जो धूल से अन्धी आंखों से न तो दख ही पा रहा है और न सांस ही ले पा रहा है। वातावरण में छायी ये धूल की आँधी कवि को असहय है—

"उफ, उफ, उफ, उफ गर्दोगुबारा।"

"दुर्घटनाएं" में वर्तमान समाज में व्याप्त मूल्य विमूढ़ता और अव्यवस्था की स्थिति के संकेत हैं जिसे कुछ बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से अंकित किया गया है। कविता में इस स्थिति का एक सांकेतिक चित्र है—

बीच सड़क पर पड़ा
फटा जूता है
मुंह खोले-ज्यों मांग रहा हो पानी
कुत्ता एक कहीं से आकर
ले जाता है उसे घसीट
उसका कटा-फटा चेहरा
हो जाता है अधिक विरूप !

"आशंका" (खंदिश) कवि की एक काफी सशक्त कविता है। वर्तमान व्यवस्था द्वारा आरोपित लिजलिजे मूल्य-मानों के प्रति उसमें अस्वीकार की तीव्र भावना है। आक्रोश है मानवीय गौरव का हनन करने वाली शक्तियों के प्रति। मनुष्य और मनुष्य के बीच खुदी, अविश्वास और भय की खाइयां, समाज में व्यक्ति के अलगाव और असुरक्षा की समस्या—यह सब इस कविता का संदर्भ है। कवि को लगता है कि वातावरण में एक भयंकर षड्यन्त्र की गन्ध छा गयी है। अनिश्चय ने एक समूची पीढ़ी को पंगु बना दिया है। स्थिति इतनी भयावह और असह्य है कि कवि आशंकित हो उठता है कि कहीं अपना आपा न खो बैठे और एक पत्थर उठा कर सत्ता-प्रष्ठिान के रंगीन शीशमहल पर न दे मारे। वह उस व्यापक झूठ को फाड़ कर तार-तार कर देना चाहता है जिसे ओढ़ कर आज का बुद्धिजीवी व्यवस्था से हर तरह के समझौते कर रहा है। कविता में अपने उन सभी साथियों पर भी प्रहार है जो सत्ता-प्रतिष्ठान का अंग बन चुके हैं ! वे अगर कवि के व्यवहार पर लज्जा का अनुभव करें तो करें—कवि को उनकी परवाह नहीं। विद्रोह की यह नयी मुद्रा, चुनौती का यह नया स्वर जो नादिम की नवीनतम कविताओं में मिलता है, काफी आश्वस्त करता है।



नयी कविता—किस ओर ?

—डॉ० ओम प्रकाश गुप्त

नयी कविता के वर्तमान स्वरूप को देखते हुए आज हमारे सामने अनेक प्रश्न उठ खड़े हुए हैं। इन प्रश्नों में सब से प्रमुख प्रश्न यह है कि नयी कविता किस के लिए लिखी जा रही है। इस कविता का रचयिता है—एक ऐसा व्यक्ति जो अपने आपको 'कवि' कहता है; इस कविता के आलोचकों की भी कमी नहीं है, ये ऐसे लोग हैं जो कविता को अच्छा या बुरा कहते हैं—मनमाने सिद्धांतों के आधार पर। किन्तु तीसरा बिन्दु जो सब से अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाना चाहिए, उसकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता। यह तीसरा बिन्दु है—पाठक। दिनकर सोनवलकर इसी संदर्भ में पाठक की ओर से कहते हैं :—

अच्छी अदालत है यार तुम्हारी
साहित्य का त्रिकोण बनता है
लेखक - पाठक - समीक्षक से
बल्कि त्रिकोण का आधार
मैं (पाठक) ही हूं

× × ×

मुकदमे का फैसला
मेरे बयान सुने बगैर कैसे होगा
सारे मामले का चश्मदीद गवाह तो मैं ही हूँ

हिन्दी के कवि को, निःसन्देह, आत्म - निरीक्षण के लिए बाध्य होना पड़ा है। राम दरश मिश्र की एक कविता की कुछ पंक्तियां हैं :—

वह (नया कवि) काफी हाऊसों में
भड़भड़ा कर हंसने लगा
अपने से पहले के सारे कवियों को
टुच्चा कह कर उन पर फब्तियां कसने लगा
और समझ लिया कि
लोग अब तुलसी और रवीन्द्र की जगह
उसी को पढ़ने लगे हैं

आज का कवि अपनी नज़र में मसीहा है, विश्व भर के दर्शनों का निचोड़ उसकी कविता में है, ऐसा विश्वास है उसे, कोई माने या न माने उसे अपनी महानता पर गर्व रहता है। कविता छंद से टूट गयी है, तकनीक का कोई दांव उस पर नहीं चलता, इस लिए कोई भी, उलटी-सीधी बात कविता की संज्ञा पा जाती है। मगर इन कविताओं का विश्लेषण किया जाए तो उधारू वाक्यांशों के सिवा कुछ शेष नहीं रहेगा।

चंद चालू मुहावरे
एकाध उबलती रचना
यही इनकी एक मात्र पूंजी है

—देवव्रत जोशी

इधर 'क्षणिकाओं'' का रिवाज बढ़ने लगा है और इन क्षणिकाओं में प्रायः थोथी नारेबाज़ी है, काव्योचित गांभीर्य का पूर्णतया अभाव है। उदाहरण प्रस्तुत है :—

गरीबी सताये

या मंहगाई का डंडा पड़े
मत घबराना
दुखती रगों पर
लोकतंत्र के तेल की
मालिश करना

—सुरेन्द्र सुधारसी

नम्बरों ने तार जोड़े दिलके
फोन पर वे बोले
उनसे मिलके—
शाम को पिक्चर की तैयारी है !
(फोन सरकारी है)

—निर्मल विनोदी

हां, निःसन्देह, कहीं कहीं हल्का व्यंग्य गुदगुदी पैदा कर जाता है। जैसा कि दूसरे उदाहरण में है। लेकिन प्यार की निम्नलिखित परिभाषा क्या कहती है, कौन जाने—

प्यार
एक फेंका हुआ सिक्का
चित्त गिरा तो तेरा
पट्ट गिरा तो मेरा

उपर्युक्त पंक्तियां एक जानी-मानी पत्रिका में 'अरुणा' नाम की कवयित्री की ओर से छपी हैं।

उपर्युक्त चर्चा का यह अभिप्राय कतई नहीं है कि हिन्दी की नयी कविता में सभी कुछ ऐसा ही लिखा जा रहा है। कवि वर्तमान परिस्थिति पर स्वयं क्षुब्ध है। वैसे, कविता में जिस अर्थहीनता की बात की जाती है, वह विश्वजनीन परिस्थितियों के कारण है। डॉ० शंभुनाथ सिंह के शब्दों में—

भागता हुआ कहां कहां
मैंने क्या क्या नहीं सहा

जीवन भर आत्म - अंध सा
लड़ता आया कबंध सा

आज कवि बौखला उठा है, यह देख कर कि मानव की संवेदना मर गयी है। अभी कल तक जो बातें हृदय को झंकृत कर देती थीं, वे आज अर्थवत्ता खो बैठी हैं।

शब्द बासी हो गये,
सब अर्थ बासी हो गये,
हर बात बासी हो गयी।

—मोहन निराश

कल के
बुदबुदाते संस्पर्श
अब
जब
झकझोर कर
भी जगा नहीं पाते
गूंज

—इंदु जैन

परम्परा से सुने शब्दों की परिभाषा बदल गयी है, कोलाहल में इनसान अपने को अकेला महसूसता है। एक दूसरे से कोई पहचान नहीं, संवाद का कोई आधार नहीं।

यह भी क्या जनरव
कि कोई भी अर्थ
इनमें से पहचाना नहीं लगता !
सभी निःस्नेह
शब्द कतरा कर चले जाते हैं

—रतनलाल शांत

इस जगत में कोई व्यक्ति दूसरे के दर्द का भागीदार नहीं बनता। आस्था की सभी देहलियों ने मानव को निराश किया है। भीड़ में खड़ा कवि स्वयं भी भीड़ न बन जाए तो क्या करे ?

पत्थर पर गिर
टूट गयीं भावुक ग्रास्थाएं
पगले मन !
ग्रब मन्दिर जाकर भी क्या होगा !
× × ×

बादल समझ नहीं पाते
मरुथल की भाषा
बिजली क्या जाने
किसका सर्वस्व जला है,
किस खिड़की ने किस दिन
किस पंथी से पूछा
इतनी तेज़ धूप में
क्यों घर से निकला है
धरती चुप ग्रंबर चुप
ग्रब तू भी चुप हो जा
इन्द्रधनुष तक गीत
गुंजा कर भी क्या होगा

—भारत भूषण

मनुष्य की नियति यह है कि जिसे वह सत्य मानता है, शीघ्र ग्रसंख्य ग्रसत्यों से घिर जाता है। उसका ग्रसंतुष्ट ग्रहं चीत्कार कर उठता है। ग्रंधेरे की एक परत के बाद दूसरी, फिर तीसरी, फिर चौथी...एक ग्रन्तहीन यात्रा।

बन्द मुट्ठियों में उबलता ग्राक्रोश
जेबों में पड़ा पड़ा सड़ जायेगा।
× × ×

ग्रात्माविहीन तुम ग्रकेले
कैसे लड़ सकोगे ग्रन्धेरे के विरुद्ध
यह ग्रन्तहीन लड़ाई।

—शशिशेखर तोषखानी

प्राय: युवा - कवि के मन का आक्रोश समझौता करने से इन्कार करता है—

समझौता मैं कर नहीं सकता
निराशा की मौत
मैं मर नहीं सकता
क्योंकि अंतर मार कर
ज़िन्दगी से हार कर ही
किये जाते हैं समझौते

—जगमोहन

आज हम ऐसे स्थान पर हैं जहां तक पहुंचने के लिए हमने कितनी योजनाएं बनाई थीं, कितने स्वप्न सजाए थे! किन्तु उपलब्धि की वेला में हमने जाना कि हमारे उपभोग के लिए निराशा के सिवा कुछ नहीं बचा है—

हम बने हैं इसलिए कि
हर नया आघात सह लें
एक खंडहर की तरह
वीरान में चुपचाप ढह लें
× × ×

चीखने पर भी सभी को
मौन हम लगते रहे हैं
फोड़ अपना शीश बस
दीवार को छलते रहे हैं।

—पुष्पा राही

संघर्ष से हारा कवि अपने अस्तित्व पर ही सन्देह करने लगता है। अपनी कविता में हर निराश प्रतीक को संजो कर वह मानो चैन का सांस लेता है—

मेरी जीर्ण कोठरी की
काली

चरमराती छत
ग्रमावस की
घनी काली रात की तरह
चंद्रिका की एक किरण
पाने की ग्रास में
रोशनी की प्यास में
बूढ़ी हो गयी है

—सुभाष भारद्वाज

इन सारे उदाहरणों के बाद क्या ऐसा नहीं लगता कि इन में "कुछ" ऐसा होना चाहिए जो नयी ग्रनुभूति का परिचय दे, एक लीक से ग्रलग हटा ले जाए ? वादों की प्रतिबद्धता से मुक्ति का नारा ले कर चली नयी कविता 'नारों' के युग में एक 'नारा' ही तो बन कर रह गयी है। पारस तातारी की निम्नलिखित पंक्तियां राजनैतिक परिवेश के प्रति ही नहीं, कविता के वर्तमान स्वरूप के प्रति भी प्रक्षेपित की जा सकती हैं :—

पिछले दिनों दिए गये
तुम्हारे नारों की पवित्र सलीब
ग्रपने कंधों पर लादे
हम चलते रहे हैं

× × ×

लेकिन इन नारों के ग्रपवित्र बोझ से
ग्रब हमारी गर्दन झुकी जा रही है

हिन्दी कविता में नव गीत के प्रयास भी हुए हैं। इसका मुख्य कारण इस तथ्य का बोध है कि लय ग्रौर छन्द के बिना कविता चिरंजीवी नहीं हो पाएगी। हृदय का स्पर्श करने की उसकी शक्ति गीत में ग्रधिक रहती है। लेकिन प्रश्न यह है कि निराशा, ऊब, ग्रनास्था के परिवेश में कवि संगीत - गीत के स्वर लहरा पाएगा ? कुमार शिव का एक गीत प्रस्तुत है—

शहर को जलाती है वंशी पुरवैया की
पीपल के हरे हाथ तालियां बजाते हैं
बहता है गंगाजल
सूखते कपोलों पर
भूख बुझे चेहरों पर
कविताएं लिखती है
मौत बनी इन दिनों
बहुचर्चित अभिनेत्री
भीड़ के रुमालों पर
हस्ताक्षर करती है
रेशमी लिबासों के गंधहीन मौसम ये
गंधहीन फूलों की लाश छोड़ जाते हैं... ..

स्वभावत:, भावना के स्तर को पूर्णतया त्याग कर बुद्धि के ही स्तर पर जीना असंभव है—विशेषकर कवि के लिए। मैथ्यू अर्नाल्ड ने बहुत पहले एक उदाहरण दिया था—

'बुद्ध के पास एक शिष्य पहुंचा –एक कठिन कार्य को सम्पन्न करने की अनुमति प्राप्त करने। बुद्ध ने उसे कहा—जाओ तुमने मुक्ति प्राप्त की है, अब औरों को मुक्ति का प्रसाद बांटो।' वह मुक्ति थी आत्मा की मुक्ति और आधुनिक युग की मांग है—बौद्धिक मुक्ति। लेकिन बौद्धिक प्रतीकों के जमघट में अनायास, कभी-कभी हल्का होने के लिए हम बौद्धिक जगत से अपने को काटने के लिए मजबूर नहीं हो जाते ?

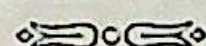
सपनों के प्लेटफार्म बहुत लंबे
हविसों के बेशुमार खंभे
टिका खड़ा उनसे जो उलझा मन
गाड़ी के आने या जाने पर
कभी कभी हंस देता, कभी कभी रोता है
ऐसा क्यों होता है ?

—प्रेमशंकर रघुवंशी

विगत दो - एक वर्षों में सामने आई नयी कविताओं का सर्वेक्षण करने पर परिलक्षित होता है कि एक ही प्रकार की अनुभूतियों की बार बार आवृत्ति की जाती है। व्यावसायिक पत्रिकाओं के कविता के पृष्ठ बिना पढ़े पलट दिये जाते हैं। अस्पष्टता और दुरूहता नयी कविता के विशेष गुण (या दुर्गुण) बन गये हैं। लेकिन लगता है कवि इस समस्या के प्रति सजग हो गया है। अभिव्यक्ति के साथ जुड़ा है प्रश्न पाठक द्वारा उसे ग्रहण करने का। हिन्दी कविता का अब तक का विकास, हमें निराश नहीं करता।

यह लड़ाई जो कि अपने आप से मैंने लड़ी है।
यह घुटन, यह यातना केवल किताबों में पढ़ी है।
यह पहाड़ी, पांव क्या चढ़ते; इरादों ने चढ़ी है।
कल दरीचे ही बनेंगे द्वार, अब तो पथ यही है।

—दुष्यंत कुमार



डोगरी लोक-गीतों में भाव लालित्य

—प्रो० शक्ति शर्मा

सौन्दर्य वह जो मन को पकड़ ले, गहरे में जाकर छू ले, विभोर कर दे। साधारण गद्य वाक्य और कवितापंक्ति में यही अन्तर है कि काव्य सुनने वाले को आत्मसात् कर लेने की शक्ति रखता है, रस में बोर देता है, अस्तित्व भूल जाने पर विवश करता है। साधारण बात-चीत में भी कोई विभोर करने वाला वाक्य सुन पड़े तो मन उसकी काव्यात्मकता में बह जाता है। यह काव्य प्रतिभा ईश्वरीय देन है; अध्ययन से प्राप्त होने वाली वस्तु नहीं। अध्ययन से छन्द, अलंकार, भाषा सौष्ठव, शब्द शक्तियों का ज्ञान और रीति शैली आदि साहित्य के कलापक्ष को सजाने संवारने का अभ्यास किया जा सकता है। काव्यशास्त्रों का अध्ययन करके काव्य में गुण दोषों को परखने की सूक्ष्म दृष्टि भी प्राप्त की जा सकती है। परन्तु काव्य सौन्दर्य की सीधी सहज अभिव्यक्ति जो अनपढ़ एवं काव्यशास्त्र से अनभिज्ञ लोकगीत की निम्न पंक्ति में है वह पचासों रीति ग्रन्थों के अध्ययन से भी प्राप्त नहीं होती। मुग्धा नववधु की लाज, मिलन की उत्कण्ठा एवं प्रकृति से सहायता प्राप्ति के अनुरोध की बड़ी ही सहज अभिव्यक्ति है।

"चन्नां तेरी चाननी, तारेया तेरी लो
गोरी सेजा जानाई तूं बदलै ओह्‌ले हो।"

(ऐ चान्द तुम्हारी चान्दनी और ओ सितारो तुम्हारी झिलमिलाहट सुन्दर सही परन्तु मुझे (पी की) सेज पर जाना है। तुम बादल की ओट में हो जाओ)।

उक्ति के कलापक्ष की सहज सरलता, अलंकारविहीन सादगी के साथ साथ भावपक्ष की गम्भीर मार्मिकता, औत्सुक्य, उत्कण्ठा एवं नववधु सुलभ लाज का प्राकृतिक सौन्दर्य के परिवेश में चित्रण—इतने सब कुछ का एक बारगी अंकन कला की पराकाष्ठा है, काव्य सौन्दर्य का आश्चर्य है।

डोगरी लोक गीतों के लेखक (नहीं लोकगीतों के लेखक तो होते ही नहीं; बनाने वाले गीतकार) इस सूनी बंजर पहाड़ी भूमि में अनुभूति के जो सटीक चित्र प्रस्तुत कर गये हैं सिद्धहस्त कवियों की सजी संवरी कविता उनके सामने फीकी लगती है।

"जोबनै दा बूटा झुल्ली-झुल्ली पौन्दा,
बेई जन्दे नजरें दे डार"

(कामिनी का यौवन रूपी वृक्ष झूल रहा है। नजरों के डार उस पर बैठ जाते हैं।)

नारी के रूप यौवन का बड़ा कलात्मक एवं कल्पनात्मक वर्णन रीतिकाल के एवं आधुनिक कवियों ने किया है। परन्तु यौवन का जितना सटीक यथार्थ क्रिया एवं प्रक्रियात्मक चित्रण उपर्युक्त पंक्ति में है ऐसा सार्थक, सुन्दर सांगरूपक हिन्दी और संस्कृत साहित्य में मिलना कठिन है। जवानी नये पल्लवित वृक्ष की तरह इठलाती हवा में झूलती है। वह अत्यन्त चंचल है। झूल झूल जाती है तो निश्चित है कि वृक्ष पर पक्षी भी चहचहाएंगे। परन्तु गीतकार की पैनी दृष्टि ने पक्षी भी अलौकिक ही चुने—नयन पक्षी। कई आते हैं यौवन के वृक्ष पर बैठते हैं। पर उन्हें वहाँ स्थायी निवास कहां प्राप्त हो सकता है। पक्षियों के झुण्ड उड़ उड़ कर आते हैं बैठते हैं और फिर उड़ जाते हैं। कल्पना ने उपमा भी ढूण्ढी तो कितनी यथार्थ कि वृक्ष पर पक्षियों के डारों का पूर्ण बिम्ब आंखों के सामने स्थापित हो जाता है। आधुनिक आलोचना शास्त्रियों को

बिम्ब विधान के लिये इतना सुन्दर उदाहरण साहित्य में कभी ही मिलता होगा।

पंत जी ने कलात्मक रूपयौवन के वर्णन में

"वह सुन्दर है सांवली सही, तरुणी है हो षोड़षी रही—
विवसना लता सी तन्वंगिनि, निर्जन में क्षणभर की संगिनि
वह जागी है अथवा सोई....................
नारी कि अप्सरा या माया, अथवा केवल तरु की छाया।"

धरती के यथार्थ का वह आग्रह कहां है जो डोगरी लोक - गीतकार की उपर्युक्त पंक्ति में है।

डुग्गर भूमि का लोक-गीतकार धरती के यथार्थ के संदर्भ में नारी के रूपसौन्दर्य का चित्रकार ही नहीं उसके अन्तःकरण स्थित भाव एवं स्वभावगत प्रकृति का सटीक एवं सचोट-चित्रण करने में भी बेजोड़ हैं।

हिन्दी संस्कृत के कवियों ने नारी की चाल का चित्रण करने में बड़ी ही निपुणता दिखाई है। गज गामिनी एवं हंस गामिनी कह कर उसकी शारीरिक स्थिति के अनुसार उस की गत्यात्मक स्थिति का अन्तर स्पष्ट कर दिया है परन्तु डोगरी लोकगीत की पंक्ति

"गोरी चलदी ऐ सपोलुऐ दी चाल"

में घमण्ड का भाव चित्रण है। रूपगर्विता नायिका की चाल अमृत की शान्ति नहीं ज़हर की बेचैनी पैदा करती है। तथा—

"गंगिए वदाम रंगिए, लौंगे दी पुड़िए
केसरै दी तुरिए, ज़हरा दी पुड़िए"

के सौन्दर्य चित्रण में हिन्दी कवियों की नायिका का चान्दनी सा सफेद अस्वस्थ सौन्दर्य नहीं बादाम के रंग का स्वस्थ सौन्दर्य चित्रण है जो लौंग की तरह तीखा, केसर सा आल्हादकारक एवं जहर सा प्रभावकारी है।

ब्रजभाषा अपने समृद्ध काव्य सौन्दर्य के कारण बड़भागन है क्योंकि सूर, नन्द दास, रसखान, मतिराम आदि महान् कवियों ने अपने सम्पूर्ण शास्त्रीय ज्ञान एवं काव्य प्रतिभा से उसके भण्डार भरे हैं। ब्रजभाषा के एक कवि 'सागर' का एक पद है—

"जाके लगे सोई जाने व्यथा, पर पीर में कोई उपहास करे न
सागर जो चुभी जात है चित्र तो कोटि उपाय करे पै टरे न
नेक सी कांकरी जाके परे वह पीर के मारे सुधीर धरे न
कैसे परे कल एरी भटु जब आंखि में आंखि परे निकरे न"

लाटानुप्रास अलंकार का चमत्कार एवं उक्ति वैचित्र्य सचमुच ही हृदय और मस्तिष्क को एक दम चमत्कृत कर देते हैं। परन्तु अनगढ़, अनपढ़ लोक-गीतकार की सादगी भी देखिये—

"जिनें ते नैनें इच किट्-नि समीन्दी, ढोल नीं समींदे सारे"

(जिन आंखों में मामूली तिनका सहन नहीं हो सकता वहां प्रिय पूर्णरूप में समा जाते हैं) जिस आंख में एक तिनका या कण भी दुखता है उसमें प्रियतम समूचा ही समा जाता है। कितनी सहज, सुन्दर, संक्षिप्त सी अभिव्यक्ति है। सीधे मन को छूने वाली एवं नायिका की तन्मयता की व्यञ्जक।

प्रियदर्शन की उतसुकता, चाह एवं उत्कण्ठा में कवियों ने दूर दूर से कौड़ियां लाई हैं। जायसी की मानस पुत्री नागमती अपने प्रियतम को सन्देसा भेजती है—

"पिय को कहहु सन्देसड़ा ऐ भौंरा ऐ काग
सोधनि विरहा जली मुई ताको धुंवा हम लाग"

अनुभूति की तीव्रता इस में है सन्देह नहीं लेकिन अतिशयोक्ति की अस्वाभाविकता से भी इनकार नहीं किया जा सकता।

विश्ववन्ध कवि कालिदास ने मेघ को दौत्य कर्म सौंप कर अपने कलात्मक चमत्कार का परिचय भले ही दिया हो लेकिन साथ ही अपने नायक की विवशता भी अंकित कर दी—जो सिवाय सन्देश

भेजने के और कुछ नहीं कर सकता, निष्क्रिय बैठा आंसू बहाता है। प्रिय को सन्देश भेज देने और प्रिय के मिलने के लिये स्वयं प्रयत्न करना अलग अलग अर्थ रखते हैं। एक और अनुभूति की उत्कण्ठा निम्न पंक्ति में देखिये—

"बदलुएं कोला बी उच्चा होई होई
मन तुगी देया दा आले"

(बादलों से भी ऊंचा उठकर मन तुझे पुकार रहा है) बादल आकाश में घूमते हुए सारे संसार को देखते हैं। मन बादलों से भी ऊपर उठकर प्रिय को ढूण्ढ रहा है, आवाज़ें दे रहा है। लोक-गीत-कार की कल्पना कितनी ऊंची उठ गई है। उत्कण्ठा की कोई सीमा नहीं। जायसी के काग, भौंरा सन्देश पहुंचायेंगे कोई भरोसा नहीं। कालिदास के मेघ और हरिऔध जी के पवन को दूत बना कर भेजने में, उनको मार्ग की झंझटों से सुलझने की बुद्धि देने का इतना धैर्य नायिका को कहां है। वह तो अपने विश्वचारी मन की सहायता से प्रिय को ढूण्ढने निकल पड़ती है और बादलों से भी ऊपर उठकर उस को आवाज़ें देती है। उत्कण्ठा की तीव्रता में किसी का सहारा न लेकर स्वयं प्रयत्नशील हो उठना ही स्वाभाविक है।

निम्नपंक्तियों में प्रेम का उघड़ा चित्रण जिसमें लोक लाज, समाज मर्यादा एव सभ्यता का कृत्रिम-आवरण उतार कर एक ओर रख दिया गया है। प्राकृतिक स्वच्छन्द प्यार और वैवाहिक सम्बन्ध के प्रणय का अन्तर जमीन और आसमान के अन्तराल सा स्पष्ट है।

"खसम मरे रण्डी रौहना ओ, यार मरे कियां जीना ओ
तन्द जे त्रुटे गण्डी लैनी ओ, अम्बर फटै कियां सीना ओ"

(पति की मृत्यु पर तो वैधव्य भोगा जा सकता है परन्तु प्रेमी के मर जाने पर जीवन कैसे सम्भव हो सकता है। एक धागा टूट जाये तो कोई गाण्ठ लगा भी ले परन्तु आकाश ही फट जाये तो कैसे सिल सकता है ?)

विरह व्यञ्जना की पराकाष्ठा के साथ वियोगिनी की अवस्था

का ऐसा प्रतीकात्मक चित्रण काव्य प्रतिभा की एक चमत्कारिक देन है जो संसार भर के काव्य सागर में मोती की तरह कभी कभी हाथ लगती है।

काव्य मुख्यत: रस है। रसों में भी करुण रस ही मुख्य है। करुण एव रस:—भवभूति। डोगरी लोक-गीतकारों ने कितनी तीव्रता से इस रस की अनुभूति की है यह अवर्णनीय है। चिरन्तन वियोगजन्य उत्कण्ठा एवं अन्त:स्तल स्पर्शिनी मार्मिकता की भावपूर्ण अभिव्यक्ति इस पंक्ति में हुई है—

"गिल्ले गोटे चुल्ली लाई धूएं पज्ज रोन्नी आं"

(चूल्हे में गीले उपले लगाकर धूएं के बहाने रो लेती हूं)

डुग्गर की नववधु अपनी प्रादेशिक मर्यादाओं के कारण किसी के सामने अपने विरह की व्यञ्जना भी नहीं कर सकती। सास, ननद, जेठानी के भरे पूरे घर में वह किसी के सामने लाज के कारण न तो वियोग का दु:ख प्रकट कर सकती है न ही आंसू बहा कर उपहास का पात्र बनना चाहती है। पर दिन रात विरह की आंच में तपते अपने मन को हल्का कैसे करे। अत: बड़ी चतुराई से उसने उपाय निकाला है। वह गीले उपले चूल्हे में डाल कर अपने हृदय की तरह ही धीरे धीरे सुलगने को छोड़ देती है धूआं फैलने लगता है और धूएं के बहाने वह खूब रो लेती है। मन की कसकती पीड़ा को हल्का कर लेती है। कितना भावपूर्ण एव सचेष्ट चित्रण है वियोगिनी की विरहावस्था का।

इस सृष्टि का आधार केवल पति पत्नी का सम्बन्ध ही नहीं डुग्गर के लोक गीतकारों ने गुप्त जी की उक्ति में निहित सत्य को बहुत पहले ही समझ रक्खा है।

"नारी जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी
आंचल में है दूध और आंखों में पानी"

अर्थात् नारी अपनी समग्रता में करुणा है। अत: उसके कन्या रूप में, भगिनी रूप में, माता रूप में सब जगह करुणा के स्रोत बहते हैं।

सुख समृद्धियों के सपने संजोए, फूलों की सेज पर सोने के बदले जब ब्याही हुई लड़की खेतों में घास खोदती है तो 'धार' (पहाड़ी) के उस पार ही जहां उसने फूलों के सपने देखे थे अपने पीहर की ओर लक्ष्य करती हुई वह गाती है—

"चम्बे दिये धारे बिन्द नीठड़ी होयां
घा बड्डी बड्डी करी पूलड़े बनांदियागी—
हत्थुएं दे छाले दिक्खी दिक्खी करी गांदिया गी
दिक्खी लै भ्रा, बिन्द नीठड़ी होयाँ"

(हे चम्बे की पहाड़ी ! जरा नीचे झुक जा ताकि मेरा भाई उस पार से मुझे देख ले कि उसकी लाड़ली बहन घास काट काट कर पूले बना रही है और अपने कोमल हाथों के छाले देख देख कर गा रही है।) पत्थर हृदय भी नारी जीवन के संघर्ष की उस करुण गाथा को सुनकर पसीज उठता है।

डुग्गर प्रान्त में पंजाब, राजस्थान आदि भारत के अन्य प्रान्तों की तरह लड़की के ब्याह पर गाये जाने वाले सुहागों (लड़की के ब्याह में गाये जाने वाले लम्बे लम्बे स्वरों के गीत जिनमें ढोलक आदि किसी साज की जरूरत नहीं होती) में करुणा की जो आर्द्रता रहती है वह अपने वेग में पत्थर दिलों को भी रुला देती है। उदाहरणार्थ—

१ बोल नी मेरिये बागें दिये कोयले
बाग तजी हुण कांह् चलीएं ?
बाबल मेरे धर्म जे कीता
धर्मैं दी बद्धी मैं चलीआं।

(ऐ मेरे उपवन की कोयल ! तू यह बाग छोड़ कर कहां जा रही है ? लड़की उत्तर देती है—मेरे पिता ने वचन दिया है मैं धर्म का पालन करने के लिये ससुराल जा रही हूं।)

२ तेरे आँगन बिच वे बाबल गुड्डियां कौन खेले
मेरियाँ खेलन पोत्तरियां, धिये घर जा अपने।

(हे पिता तुम्हारे आंगन में अब गुड़ियां कौन खेलेगा ? पिता

उत्तर देता है—कि अब पोतियां गुड़ियां खेलेंगी, बेटी अब तू अपने घर जा। अब सुसराल ही तेरा घर है।)

३ औन्दे जन्दे राही पुछदे तूं कैत लाडो रोईएं
बाबल मेरे काज रचाया मैं परदेसन होई आं।

(आते जाते व्यक्ति पूछते हैं बेटी तू क्यों रोती है? लड़की उत्तर देती है—मेरे पिता ने मेरा ब्याह रचाया है। मैं विदेस जा रही हूँ।)

४ साम्भी रखेओ मेरे गुड्डी पटोले
मां नि रोयां तूं भित्तें दे ओह्ले
धी परदेसन होई।

(मेरी गुड़ियां और उनके वस्त्राभूषण सम्भाल कर रखना। हे माता तू द्वार की ओट में रोना नहीं। तुम्हारी लाड़ली बेटी परदेस जा रही है।)

करुण रस के पश्चात् शृङ्गार रस ही अधिकांश काव्य का ग्राह्य रहा है। डुग्गर के लोक गीतों में शृङ्गार के संयोग वियोग पक्षों का भी अनूठा चित्रण हुआ है। नायिका घड़ा ले कर कूएं पर पानी भरने गई है। नायक बात करना चाहता है। लेकिन कोई बहाना नहीं मिल रहा। नायिका ने घड़ा कूएं में गेरा तो वह 'गड़ गड़ गड्डुम' करने लगा। बस लोक गीतकार के नायक को बात करने का बहाना मिल गया। वह कहता है—

"बोलने आली बोलदी नैइयों, तूं कैत बोलना मड़ेया ओ"

(जिससे बोलने की चाह है वह तो बोलती नहीं। तू क्यों बुड़बुड़ाता है?)

इस पंक्ति में न तो चमत्कार है, न अलंकार और न ही उक्ति वैचित्र्य। लेकिन कुछ ऐसा है जो गीतकार की दाद देने को विवश करता है। कुछ भी न कह कर बहुत कुछ कह दिया है उसने एक ही पंक्ति में।

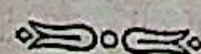
गीत इस प्रकार है—

घड़ेया वे घड़ोलड़ेया, तुगी जेठ म्हीनै घड़ेया ओए
... ...
भरने आली बड़ी मजाजन डुमकें डुमकें भरेया ओए
लज्ज वो तेरी डुनकें आली बिन्ना मोती जड़ेया ओए
बोलने आली बोलदी नेइयों, तूं कैत बोलें मड़ेया ओए।

(हे घड़े! तुझे ज्येष्ठ मास में तैयार किया गया। पानी भरने वाली बड़ी नखरेबाज है। बड़े नखरे से पानी भरती है। घड़े के गले में डालने वाली डोरी भी रंगीन है। सिर पर घड़े के नीचे रखने वाला 'बिन्ना' भी मोतियों से जड़ा हुआ है। जिसके साथ बोलने की चाह है वह तो बोलती नहीं, तू क्यों बुड़बुड़ाता है?)

यह है काव्य व्यञ्जना का चमत्कार। पानी में घड़े के डुबोने से 'गुड़गुड़' शब्द तो स्वाभाविक है। उस शब्द को गीतकार ने कितना बड़ा अर्थ दे दिया है। और वह भी सीधा नहीं व्यञ्जना-पूर्ण। सीधी सी बात कह देने में भला काव्यात्मकता कहां रह जाती? करुण, शृङ्गार आदि प्रमुख रस तो लोक गीतों में स्वाभाविकतया रहते ही हैं, डोगरी लोक गीतों में हास्य रस का पुट भी भरपूर मात्रा में मिलता है। हास्य रस के लिये ब्याह शादियों पर गाई जाने वाली गालियाँ और मुहावरे मुख्य हैं जो हर भाषा के लोक गीतों में उपलब्ध होते हैं। डोगरी लोक गीतों में युवती पत्नी के वृद्ध पति के एवं बच्चे के जन्म पर नानी दादी के रेखा चित्र हास्य रस की अच्छी सृष्टि करते हैं। परन्तु भैंस का काव्यात्मक एवं हास्यपूर्ण चित्र शायद मुश्किल से मिले। नारी की दन्त पंक्ति की उपमा तो अनार एवं मोतियों से कई लोगों ने दी है लेकिन भैंस के दान्तों को "चम्बे दियां कलियां" कहना डोगरी लोक गीतकार की ही मौलिक कल्पना है।

डोगरी का लोक साहित्य काव्य गुणों की खान है यह झलक मात्र कुतूहलवर्धिनी है। आवश्यकता है इस के अध्ययन की। यह प्रसन्नता का विषय है कि अब विद्वान लोक-साहित्य को भी उतना ही मान देने लगे हैं जितना कि शिष्ट साहित्य को।



भारतीय संस्कृति और संस्कृत के उद्धारक महाराजा रणवीर सिंह

—सत्यपाल शास्त्री

भारतीय संस्कृति और संस्कृत भाषा के पुनरुत्थान में महाराज रणवीर सिंह का जो महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। इस महापुरुष का व्यक्तित्व वीरता, भक्ति और विद्या प्रेम के अद्भुत समन्वय से बना हुआ था। इस प्रकार का अपूर्व समन्वय किन्हीं इने-गिने महापुरुषों में ही देखने को मिलता है।

महाराजा रणवीर सिंह जहां अपने पिता श्री गुलाब सिंह द्वारा नवसंस्थापित जम्मू-कश्मीर राज्य को सुदृढ़ करने के लिए अवतरित मूर्तिमान् वीर रस थे तो वहां भारतीय संस्कृति एवं संस्कृत भाषा का उद्धार करने वाले आद्य शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, सन्त तुलसी दास जैसे महापुरुषों के समान एक पवित्र हृदय सन्त भी थे। इस प्रकार इन्हें राजर्षि कहने में भी कोई अत्युक्ति नहीं होनी चाहिए। इन्होंने अपनी वीरता द्वारा जम्मू-कश्मीर राज्य की सीमाओं पर शत्रुओं के दांत खट्टे किए, अपनी एकनिष्ठ भक्ति भावना द्वारा सर्वत्र सात्विक वातावरण उत्पन्न कर दिया और अपने विद्याप्रेम द्वारा संस्कृत के शिक्षा केन्द्र खोलकर देश का,

विशेषतः जम्मू कश्मीर राज्य का, महान् उपकार किया। इसके लिए देश उनका चिर ऋणी रहेगा।

इसका जन्म १८२९ ई० में जम्मू प्रान्त के रामगढ़ नामक छोटे से गांव में हुआ था। इनका विवाह तत्कालीन प्रथानुसार १४ वर्ष की अल्पायु में ही हो गया था। इनकी पत्नी का नाम सीना था। इनके पिता महाराजा गुलाब सिंह की जब १८५७ ई० में मृत्यु हो गई तो इनका विधिवत् राज्याभिषेक किया गया। राज्यारोहण के थोड़े समय बाद ही इनके प्रजा वात्सल्य, विद्या प्रेम और ईश्वर भक्ति आदि गुण पुष्प सुरभि के समान सर्वत्र फैलने लगे। संस्कृत भाषा के साथ इन का अगाध प्रेम था। इसके साथ ही वैदिक धर्म पर भी इनकी अटूट श्रद्धा थी। इसीलिए इन्होंने दोनों के उद्धार और प्रसार के लिए एक योजनाबद्ध कार्य-क्रम तैयार किया। इनका विचार था कि मेरा सूर्यवंशी एवं (रघुवंशी) होना तभी चरितार्थ होगा जब मैं वैदिक संस्कृति एवं धर्म का संस्कृत के माध्यम से प्रचार कर सकूंगा जिससे कम से कम जम्मू व कश्मीर राज्य में तो रामराज स्थापित हो सके। यह अपने इन्हीं निश्चयों को चरितार्थ करने के लिए अपने राज्य की दोनों राजधानिओं (जम्मू तथा श्रीनगर) को धर्म और संस्कृत भाषा के अध्ययन का केन्द्र बनाने के लिए कृतसंकल्प हो गए। जम्मू में श्री रघुनाथ मन्दिर की विशाल परिधि में इन्होंने एक ओर संस्कृत महाविद्यालय और गौशाला (खेद है कि यह अब नहीं रही) और दूसरी ओर श्री रघुनाथ पुस्तकालय की स्थापना की। संस्कृत विद्यालय में संस्कृत साहित्य के सभी विषयों के योग्य विद्वानों की नियुक्ति की गई। पांच सौ छात्रों के निवास, भोजन तथा अन्य प्रकार की सुविधाओं का प्रबन्ध किया गया। परिणामतः भारत के कोने कोने से छात्र यहां अध्ययनार्थ आने लगे। इतना ही नहीं नेपाल तक के छात्र भी यहां आकर विद्यालाभ करने लगे। बाहर से आने वाले छात्रों की परम्परा १९४७ ई० के बाद धीरे-धीरे समाप्त होती गई।

इसके बाद महाराज रणवीर सिंह ने उत्तरबाहिनी और श्रीनगर में संस्कृत विद्यालय स्थापित किए। उत्तर-बाहिनी वाले

महाविद्यालय में भी पांच सौ छात्रों के लिए निःशुल्क भोजन-आवास आदि का प्रबन्ध किया गया।

इन सभी विद्यालयों में वेद, वेदाङ्ग, व्याकरण आदि संस्कृत साहित्य की सभी शाखाओं के अधिकारी विद्वानों को नियुक्त किया गया। दुर्भाग्य से अब केवल जम्मू वाला विद्यालय ही श्री रणवीर संस्कृत केन्द्रीय विद्यापीठ के नाम से शेष रह गया है। इसका सम्पूर्ण प्रबन्ध तथा व्यय आदि का भार केन्द्रीय सरकार वहन कर रही है।

कहा जाता है कि महाराज रणवीर सिंह इन विद्यालयों का निरीक्षण करने के लिए समय - समय पर जाया करते थे। विशेष कर छात्रों की परीक्षा के दिनों में तो अवश्य ही जाया करते थे। जो छात्र परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करते थे उन्हें पारितोषिक देकर उत्साहित किया जाता था। कुछ एक को छात्रवृत्तिआं भी प्रदान करते थे। स्वयं संस्कृतज्ञ न होकर भी महाराजा ने संस्कृत भाषा के उत्थान के लिए जितनी निष्ठा से योजनाबद्ध काम किया, शायद ही कोई अन्य, संस्कृत न पढ़ा हुआ, कर सकता है। स्पष्ट है कि महाराजा ने—'द्वयमपि रक्षणीयं संस्कृति संस्कृतञ्च', अर्थात् संस्कृत और संस्कृति दोनों की रक्षा करनी है—इस उक्ति को अपने जीवन में चरितार्थ कर रखा था।

१८७५ में संस्कृत के प्रसिद्ध योरोपीय विद्वान डॉ० ब्हूलर जब राज्य में संस्कृत की पाण्डुलिपिओं की खोज करने के लिए आए तो इन विद्यालयों को देख कर बड़े प्रसन्न हुए थे एवं इन में तथा रणवीर पुस्तकालय में संस्कृत साहित्य की उन्नति सम्बन्धी कार्य को देखकर बड़े प्रभावित हुए थे विद्यालयों की स्थापना के बाद महाराजा ने अपना ध्यान पुस्तकालयों की ओर लगाया। राज्य एवं देश के अन्यान्य भागों से योग्य विद्वानों को आमन्त्रित करके पाण्डुलिपिओं के सग्रह, प्रकाशन, सम्पादन तथा प्रतिलिपि-कार्य में नियुक्त किया गया। इन्होंने विद्वानों की सुख-सुविधा का हर प्रकार से सुचारू प्रबन्ध कर रखा था। राज्य में एक विशाल विद्याविलास नामक

मुद्रणालय (प्रेस) की स्थापना की गई । आज यही—
रणवीर गवर्नमेंट प्रस के नाम से विख्यात है ।

पाण्डुलिपि संग्रह तथा प्रकाशन के सारे कार्य को व्यवस्थित रूप देने के लिए महाराजा की आज्ञा से विद्वानों के पृथक् - पृथक् मण्डल बनाए गए— जैसे पाण्डुलिपियों का संग्रह करने वाला मण्डल, सम्पादक मण्डल तथा प्रकाशक मण्डल इत्यादि । पाण्डुलिपियां एकत्र करने वाले मण्डल के दो भाग किए गए । एक जम्मू कश्मीर में पाण्डुलिपियों की खोज करने लगा और दूसरा पं० आशानन्द की अध्यक्षता में राज्य के बाहर भेजा गया । इसने पांच हज़ार रुपये की धनराशि से वाराणसी से दुर्लभ पाण्डुलिपियां खरीद कर लाईं । इस योजना की सम्पन्नता के लिए पं० गोकुलचन्द जयपुर निवासी, पं० ब्रजलाल जी, पं० दिलाराम, पं० रसमोहन भट्टाचार्य, पं० भास्कर, पं० व्यास आदि ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया । इनमें से कुछ विद्वानों ने भारत के कोने - कोने से अमुद्रित पुस्तकें संग्रहीत की थीं । महाराजा प्रताप सिंह के राज्यकाल में इस पुस्तकालय का कैटॉलॉग बनाने वाले डॉ० आर० एल० स्टाईन महोदय का कहना है कि इन पुस्तकों में से पूर्व मीमांसा, वेदान्त तथा न्याय आदि दर्शनों की चौसठ पुस्तकें ऐसी हैं जिनका वर्णन डॉ० फटनस एडवर्ड हाल्ल की पुस्तक—"कण्टरीब्यूशन टुवर्डस एन इन-डैक्स टु दी बिबिलियोग्राफी ऑफ दी इण्डियन फिलॉसफीकल सिस्टम" में मिलता है । इस पुस्तक का प्रकाशन १८५९ ई० में कलकत्ता में हुआ था ।

१८६९ ई० में जब पटियाला निवासी पं० व्यास की मृत्यु हो गई तो महाराजा ने उनके पुस्तकालय की सारी पुस्तकें उनकी पत्नी को पर्याप्त धन देकर खरीद लीं । इसी प्रकार जम्मू निवासी पं० रामकृष्ण और पुरमण्डल निवासी पं० गोपाल राम से भी पुस्तकें खरीद कर पुस्तकालय की श्री वृद्धि की गई । जो विद्वान् दुर्लभ तथा अप्राप्य पाण्डुलिपियों को खोज कर लाते थे, उन्हें विशेष पारितोषिक भी दिये जाते थे । इससे काम बड़े उत्साह तथा गति-शीलता से चलता गया । इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि

महाराज रणवीर सिंह प्रशासन सम्बन्धी कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी अपनी साहित्यिक अभिरुचि के प्रति कितने जागरूक थे।

जम्मू में कार्य को योजनाबद्ध रीति से चालू करके महाराजा ने कश्मीर में इसका सूत्रपात करके इस योजना का क्षेत्र विस्तृत किया। १८६९ ई० में पं० राज काक की अध्यक्षता में प० बलभद्र काक, पं० साहिब राम, पं० कृष्ण भट्ट आदि ने वहां काम आरम्भ किया। जो विद्वान् अपनी अन्धश्रद्धा के कारण पुस्तकें बेचना धर्म-विरुद्ध समझते थे उनकी पाण्डुलिपिओं तथा पुस्तकों की प्रतिलिपियां की जाती थीं। शैवदर्शन, काव्यालंकार आदि विषयों की पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद तथा हिन्दी टीकाएं भी की गईं।

पं० राजकाक की मृत्यु के बाद यह काम जम्मू के पं० जगद्धर को सौंपा गया। उनकी अध्यक्षता में पं० सुखराम, पं० आशाराम और पं० दयाराम ने इस विषय में बड़ा काम किया। ध्यान रहे इन सभी विद्वानों को पर्याप्त वेतन तथा आर्थिक सहायता दी जाती थी। जिस प्रकार आज योरोपीय देशों में सरकार की ओर से विद्वानों को आर्थिक चिन्ता से सर्वथा मुक्त करके अनुसन्धान के क्षेत्र में तथा साहित्यिक अभ्युन्नति के लिए कार्यरत किया जाता है ठीक उसी प्रकार महाराजा रणवीर सिंह ने अपने राज्य में किया, अन्यथा इतनी विशाल योजना की सफलता असम्भव थी। सचमुच महाराजा रणवीर सिंह कितने दूरदर्शी उदार तथा संस्कृति प्रेमी थे। ऐसे गुण बहुत कम शासकों में पाए जाते हैं।

महाराजा रणवीर सिंह की उदारता तथा साहित्यिक अभि-रुचि का एक और ज्वलन्त प्रमाण यह है कि उन्होंने उर्दू, फारसी तथा अरबी भाषाओं के विद्वान् मौलवी तथा आलम फाज़िलों को भी इस काम के लिए नियुक्त किया। इन विद्वानों ने लगभग ३८ दुर्लभ पुस्तकों का अनुवाद किया। इन में अहल्लक मुंशी प्रसिद्ध है। इससे स्पष्ट है कि महाराजा ने हिन्दु-मुस्लिम संस्कृतिओं के मध्य सामरस्य उत्पन्न करने के लिए कितना महत्त्वपूर्ण तथा प्रशस्य कार्य किया होगा। इतना ही नहीं महाराजा ने डोगरी भाषा की

उन्नति के लिए भी बड़ी अभिरुचि से काम किया। इनके राज्य-काल में ही डोगरी पहली बार राज्य भाषा घोषित की गई।

उनके बौद्धिक एवं आध्यात्मिक आयाम में न जाने क्या कुछ समाया हुआ था। उन जैसी तेजस्विता, मौलिक चिन्तन, निर्भीकता तथा उदार दृष्टिकोण बहुत कम व्यक्तियों में मिलता है। देश की तत्कालीन प्रतिकूल परिस्थितियों के होते हुए कर पाना कठिन ही नहीं असम्भव भी है। काश! कि कराल उन्हें कुछ वर्ष और जीने देते जिससे भारतीय संस्कृति और संस्कृत भाषा तथा अन्य भाषाओं का विकास होता। क्या ही अच्छा होता कि उनसे आरम्भ की हुई वृहत् योजना को यथावत् चलाए रखा जाता।

१८७३ ई० में पं० आशानन्द की अध्यक्षता में पण्डितों की एक उपसमिति बना कर वाराणसी भेजी गई जिसने वहां अमुद्रित पुस्तकों की प्रतिलिपियां कीं।

इस प्रकार १८७६ ई० तक विद्वानों ने जो काम किया उस का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

रणवीर विजय, रणवीर सिंह सदाचार रत्नाकर, रणवीर संगीत महोदधि, रणवीर प्रायश्चित्त रत्नाकर, रणवीर वैद्यरत्नाकर रणवीर चिकित्सा प्रकाश, रणवीर चिकित्सा (डोगरी लिपि) रणवीर ण्डनिधि आदि अमुद्रित तथा मुद्रित पुस्तकों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त पं० नव्यचण्डी दास कृत रघुनाथ गुणोदय काव्य, पं० साहिब राम कृत नीतिकल्पलता, पं० गणेश शास्त्री रचित विषहर तन्म, श्री पं० लल्ल रचित प्रश्नरत्नावली, पं० दया राम ने मत्स्य पुराण, वायुपुराण, मार्कण्डेय पुराण आदि पर टीकाएं कीं। इसी प्रकार ताजिक संहिता के मुहूर्त खण्ड प्रामाणिक अनुवाद तैलङ्ग पं० वेंकट शास्त्री, पं० दामोदर, पं० गोविन्द कौल, पं० महाडिम्ब, पं० ईश्वर कौल, पं० देवकृष्ण, पं० गोविन्दाचार्य तथा पं० गङ्गा राम ने मिलकर किया था।

श्री रघुनाथ मन्दिर में महाराजा ने जो रणवीर पुस्तकालय स्थापित किया है उसमें कुछ भुर्जपत्र तथा तालपत्र पर लिखी हुई

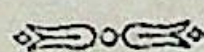
दुर्लभ पाण्डुलिपियाँ हैं। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं—पुरुषोत्तम महात्म्य (तालपत्र) भुर्जपत्र ग्रन्थावली (शारदा लि०)।

इस पुस्तकालय में कुछ ऐसी दुर्लभ पुस्तकें भी हैं जिनका अपना विशेष महत्त्व है। उनका विवरण संक्षेप में इस प्रकार है—श्रीमद्भगवद्गीता (२० टीकाओं वाली), रप चल नम यर नोन पेजूम पा (लद्दाखी में) इसका हिन्दी नाम 'पराक्रम विक्रम परिपृच्छा' है। तोक जुस (लद्दाखी में) (संस्कृत नाम मुकुट धारणम्) रागावली (सचित्र फारसी लि०)

कुछ दुर्लभ अमुद्रित पुस्तकों के नाम इस प्रकार हैं—

अथर्ववेद संहिता पैत्थलाद शाखा। राम पूर्वोत्तर तापनीयोपनिषद्। अमरकोश नाम माला लद्दाखी भाषानुवाद सहित। रणवीर विजय नानार्थ कोश, नाम विभाग माला, वीर रत्न शेखर शिखा तथ धर्म निर्णय आदि।

इस प्रकार महाराजा रणवीर सिंह ने भारतीय संस्कृति तथा विविध भाषाओं के साहित्य (विशेषकर संस्कृत साहित्य) की रक्षा के लिए जो कार्य किया वह भारत के सांस्कृतिक इतिहास का एक अमर उदाहरण है।



रुय्यक की सहृदय लीला में नारी सौन्दर्य

—डॉ० वेद कुमारी

नारी सौन्दर्य युग युगान्तरों से साहित्य और कला का प्रिय वर्ण्य विषय रहा है। महाकवियों की लेखनी रमणी के लावण्य का वर्णन करके धन्य होती रही है। चित्रकार की तूलिका और मूर्ति-कार की छेनी ने भी उस सर्वातिशायी सौंदर्य का अंकन करने में संतोष पाया है। वह सौन्दर्य क्या है? और इसके संरक्षण संवर्धन के कौन से उपाय हैं? इन प्रश्नों पर भी संस्कृत साहित्यकारों ने पर्याप्त विचार किया है। कश्मीर के प्रसिद्ध आलंकारिक श्री राजानक रुय्यक की एक छोटी सी कृति सहृदयलीला काव्यमाला गुच्छक ५ इस विषय पर प्रकाश डालती है।

राजानक, रुय्यक जिसका दूसरा नाम राजानक रुचक भी है, कश्मीर के महाकवि मंख का गुरु था। मंख ने अपने महाकाव्य श्रीकण्ठचरित की रचना ११३५—११४० ईस्वी के बीच की थी अतः रुय्यक का समय बारहवीं शताब्दी का प्रारम्भ माना जा सकता है। विद्यानाथ के प्रतापरुद्रीय (१२६५—१३२३ ई०) में भी रुय्यक को उद्धृत किया गया है। रुय्यक की आठ कृतियो में से छः अलंकारसर्वस्व, काव्यप्रकाशसंकेत, साहित्यमीमांसा, अलंकारा-नुसारिणी, व्यक्तिविवेकविचार और नाटकमीमांसा तो साहित्यशास्त्र

के ग्रंथ हैं, हर्षचरितवार्तिक बाण के हर्षचरित की टीका है तथा आठवीं रचना सहृदयलीला सौन्दर्यशास्त्र सम्बन्धी छोटा सा निबन्ध है। एक सच्चे सौन्दर्य पारखी के लिए सहृदय (रसिक) और उदार होना आवश्यक होता है इसलिए रुय्यक ने अपनी इस कृति का नाम भी सहृदयलीला रखा है। अलंकार सम्प्रदाय के इस प्रसिद्ध आचार्य की दृष्टि में जैसे भाषा को सजाने संवारने के लिए अलंकारों का महत्त्व है उसी प्रकार मानव रूप विशेषतः नारी रूप को सजाने के लिए कई प्रकार के प्रसाधनों की आवश्यकता होती है। युवतियों का सौन्दर्य गुण, अलंकार, जीवित और परिकर इन चार तत्त्वों पर निर्भर होता है और सहृदयलीला के चार अध्यायों में क्रमशः इन्हीं चारों तत्त्वों का वर्णन है।

शोभा को उत्पन्न करने वाले दस गुणों की व्याख्या पहले अध्याय में की गई है। यह गुण हैं—रूप, वर्ण, प्रभा, राग, आभिजात्य, विलासिता, लावण्य, लक्षण, छाया और सौभाग्य। रूप का अर्थ है अंगों की विभाजक रेखाओं की स्पष्टता। शरीर का सौंदर्य इसी में माना गया है कि प्रत्येक अंग का उतार-चढ़ाव उचित मात्रा में हो तथा वह दूसरे अंग से स्पष्टतया अलग दिखाई पड़े। गोरे श्यामल आदि रंग जो त्वचा के विशेष धर्म हैं, वर्ण कहे गये हैं। शीशे की तरह चमकती सूर्य जैसी कान्ति प्रभा कही गई है। स्वाभाविक मुस्कान और चेहरे की रौनक जो सभी की आंखों को बांध लेती हो, राग नाम से पुकारी जाती है। फूलों सी वह कोमलता जिसे छूने पर सहलाने की इच्छा हो और जिसे पेशलता भी कहा जाता है, आभिजात्य नामक गुण है। कामवासना से प्रेरित और यौवन को प्रेरित करने वाली, अंगों और उपांगों की हाव भाव भरी चेष्टाएं विभ्रम-विलासिता कही जाती हैं। यहां रुय्यक ने विभ्रम और विलासिता को पर्यायवाची माना है परन्तु दशरूपककार धनञ्जय के अनुसार विभ्रम जल्दबाजी में आभूषणों को उलटा सीधा पहनना होता है। तरंगित तरल पदार्थ के स्वभाव से युक्त, नेत्रों को तृप्त करने वाला, व्यापक स्नेह और माधुर्य से पूर्ण, चमकते सूर्य के रंग के उत्कर्ष जैसा, पूर्ण चन्द्र की तरह आनन्द देने वाला, शारीरिक गठन के सौन्दर्य से अभिव्यक्त धर्म लावण्य

कहलाता है। अंगों उपांगों की साधारण शोभा की प्रशंसा का कारण बना हुआ औचित्यात्मक स्थायी धर्म लक्षण कहा जाता है। यह लक्षण छः प्रकार के होते हैं। अङ्गों के उचित प्रमाण से अङ्ग पूर्णता, दोषराहित्य से अदोष, स्पर्श में कोमलता से वैकल्य, वक्रनियत लोमों से तथा अंगों की सुश्लिष्ट गठन से सौन्दर्य, समुचित लम्बाई चौड़ाई में प्रमाणौचित्य तथा चक्र पद्म आदि चिन्हों के योग से लोक-प्रसिद्ध विशिष्टांगयोग—ये छः भेद होते हैं। पान चबाते हुए, वस्त्र पहनते हुए, नाचते हुए, बातचीत करते हुए, चलते फिरते हुए नागरिक ढंग से बांकपन को दिखाने वाली सूक्ष्म मुद्राएं छाया नाम से पुकारी जाती हैं। फड़कते हुए सौन्दर्य, उपभोग, सुगंध आदि से ज्ञात होने वाला, भीतर से तत्त्वयुक्त, अपनी रंगीनी से वश में कर लेने वाला, सहृदय लोगों द्वारा अनुभूयमान धर्म सौभाग्य कहलाता है। फड़कते सौन्दर्य में तो काम की मस्ती और रोमाञ्च आदि आते हैं किन्तु उपभोग और परिमल में बोलचाल, रूपदर्शन, अधर-पान, सुगंध, उपभोग आदि से पांचों इन्द्रियों को आनन्द की प्राप्ति होती है। इन दस गुणों में से छाया और विलासिता तो अर्जित किए जाते हैं, शेष स्वाभाविक होते हैं।

सहृदयलीला के दूसरे अध्याय में अलकारों का वर्णन किया गया है। रुय्यक के अनुसार शरीर की सजावट को सात वर्गों में रखा जा सकता है! रत्नमय, स्वर्णमय, अंशुकमय, माल्यमय, मण्डनद्रव्यमय, योजनामय और प्रकीर्ण।

रत्न तेरह प्रकार के हैं- वज्र, मुक्ता, पद्मराग, मरकत, इन्द्रनील, वैदूर्य, पुष्पराग, कर्केतन, पुलक, रुधिराक्ष, भीष्म स्फटिक तथा प्रवाल इनमें से कई रत्नों का विवरण कश्मीरी कवि क्षेमेंद्र ने नीतिकल्पलता में दिया है। वज्रों के कई रंग तथा प्रकार कहे गए हैं। वेण्णातट के वज्र श्वेत होते हैं, कोसल से प्राप्त वज्रों का रंग शिरीष जैसा होता है, सौराष्ट्र के वज्र कुछ-कुछ लाल होते हैं, हिमालय से प्राप्त वज्रों का रंग लाल होता है, कलिङ्ग के वज्र पीले तथा पुण्ड्र देश से प्राप्त वज्र काले होते हैं। बीस तण्डुल जितने

आकार के वज्र का मूल्य दो लाख कार्षापण कहा गया है। छोटे से छोटा वज्र भी दो सौ कार्षापण का कहा गया है। विभिन्न प्रकार के वज्रों से सम्बन्धित देवताओं का तथा उन वज्रों को पहनने का फल भी क्षेमेन्द्र ने बताया है। इसी प्रकार मुक्ता, पद्मराग, मरकत इत्यादि का विवरण भी उसने दिया है। सोमेश्वर कृत मानसोल्लास में वज्र की कान्ति सफेद, लाल, पीली तथा काली बताई गई है। मोती भी चार तरह के—पीले, मधुर, सफेद तथा नीले—बताए गए हैं। मरकत मणि के आठ रंग होते हैं। एक मयूरपंख की तरह, दूसरा चाष के पंख की तरह, तीसरा हरे शीशे की तरह, चौथा सेवाल की तरह, पांचवां जुगनु की तरह, छठा बालकीर के पंख की तरह, सातवां हरी घास की तरह तथा आठवां शिरीष के फूल की तरह होता है। इन्द्रनीलमणि नीले रंग की होती है। वैदूर्य कुछ पीला होता है। स्फटिक सूर्यकान्त, अशोकपत्र, अनार के दानों की तरह कई प्रकार के होते हैं।

सोना नौ प्रकार का होता है—जाम्बुनद जो जम्बुनदी से प्राप्त होता था, शातकौम्भ जो शतकुम्भ पर्वत से मिलता था, हाटक हाटक पर्वत से मिलता था, और वैणव वेणु नदी से प्राप्त होता था। शृङ्गी शुक्तिज, जातरूप, रसविद्ध तथा आकरोद्गत यह अन्य पांच प्रकार हैं।

रत्नों तथा सोने से बने हुए आभूषणों को पहनने के ढंग की दृष्टि से चार वर्गों में रखा गया है—आवेध्य, निबन्धनीय, प्रक्षेप्य तथा आरोप्य।

आवेध्य :—जो अंग को वेध कर पहने जाएं जैसे ताडी, कुण्डल, कानो की बालियां आदि। ताडी का उल्लेख कश्मीरी कवि बिल्हण के विक्रमांकदेव चरित के बारहवें सर्ग के बारहवे श्लोक में मिलता है। इस आभूषण की पहचान विवाहित कश्मीरी स्त्रियों द्वारा पहने जाने वाले कर्णभूषण डचजहोरु से की जा सकती है। सोने की लम्बी जंजीरों या रेशमी धागों से कन्धों के नीचे तक लटकते हुए यह आभूषण किसी भी

हिन्दू कश्मीरी स्त्री के विवाहित होने का प्रमाण देते हैं। जिस सूत्र से यह आभूषण लटकते हैं उसे अभी तक तालिरज कहा जाता है।

निबन्धनीय :—जो बांध कर पहने जाएं जैसे अङ्गद, श्रोणीसूत्र, मूर्धमणि, शिखादढिका।

प्रक्षेप्य :-जो डाल कर पहने जाएं जैसे अंगूठी, चूड़ी, मंजरी।

आरोप्य :—जो आरोपित करके पहने जाएं जैसे लटकती हुई माला, हार, नक्षत्रमाला आदि।

उत्पत्ति की दृष्टि से वस्त्र चार प्रकार के बताए गए हैं। वृक्ष की छाल से उत्पन्न जैसे क्षौम, फल से उत्पन्न जैसे कपास के बने वस्त्र, कीड़ों से उत्पन्न रेशमी वस्त्र, पशुओं के रोओं से उत्पन्न राङ्कव या ऊनी वस्त्र। पहनने के ढंग की दृष्टि से वस्त्र तीन प्रकार के होते हैं—

निबन्धनीय :—जो बांध कर पहने जाएं जैसे शिरः शाटक, काछ आदि।

कश्मीर में स्त्रियां दुपट्टा साधारण ढंग से नहीं ओढ़तीं अपितु विशेष ढंग से उसे सिर पर बांधती हैं ताकि माथा, सिर पूरी तरह ठंडक से बचा रहे। इस वस्त्र को तरंग कहा जाता है। इसी के लिए रुय्यक ने शिरः शाटक शब्द का प्रयोग किया है।

प्रक्षेप्य :—जो डाल कर पहने जाएं जैसे चोली।

आरोप्य :—जो ओढ़े जाएं जैसे दुपट्टा। रंग तथा छपाई के डिज़ाइनों के कारण इन वस्त्रों के कई प्रकार होते हैं। बाण के ग्रन्थों हर्षचरित तथा कादम्बरी में अनेक प्रकार की रंगाई तथा छपाई वाले वस्त्रों का वर्णन मिलता है। मानसोल्लास में मजीठ के रस से लाल किए, लाक्षारस से लाल किए, कुसुम्भ के रस में रंगे, सिन्दूर के रंग से रंगे, अभय रस से

काले रंगे, नीले, शुकपिच्छ जैसे रंग वाले, कोयल के कण्ठ जैसे रंग वाले, श्वेत रेखाओं से युक्त, नाना रंगों की लकीरों से युक्त, पंचरंगे, चक्र और रेखा युक्त, तीन रेखाओं वाले, ऊपर के भाग में दूर दूर रेखा वाले तथा मध्य में सूक्ष्म रेखा वाले, वृत्तरेखा वाले, चतुष्कोण रेखा वाले तथा बिन्दुयुक्त वस्त्रों का उल्लेख किया गया है। रुय्यक ने इन सब का उल्लेख न कर केवल अनेकविधत्वं वर्णविच्छित्तिनानात्वात् कह दिया है।

मालाओं के वर्णन में रुय्यक ने कहा कि मालाएं गुंथी तथा न गुंथी होने से दो तरह की होती हैं। पहनने के ढंग तथा बनाने के ढंग की दृष्टि से मालाएं आठ तरह की होती हैं—

वेष्टित :—जो माला पूरे अंग को घेर ले।

वितत :—जो माला शरीर के एक भाग में फैली हो।

सघाट्य :—जो माला अनेक प्रकार के फूलों के समूह से बनाई गई हो।

ग्रन्थिमत् :—जिस माला के बीच-बीच में गांठें हों।

अवलम्ब :—जो माला स्पष्ट हो अर्थात् पूरी तरह दिखाई देती हो।

मुक्तक :—जिसकी सजावट एक ही फूल से की गई हो।

मंजरी :—जब अनेक फूलों वाली लता को ही माला के रूप में पहना जाए।

स्तबक :—जब फूलों के गुच्छों को माला रूप में पहना जाए।

इन मालाओं के फिर आवेध्य, निबन्धनीय, प्रक्षेप्य तथा आरोप्य यह चार भेद होते हैं। फूलों की सजावट का कश्मीर के प्रसाधनों में महत्त्वपूर्ण स्थान था। क्षेमेन्द्र के लोक प्रकाश में शृङ्गार चिन्हों के रूप में छप्पन प्रकार के फूलों का उल्लेख है।

मण्डनद्रव्य के अन्तर्गत रुय्यक ने निम्नलिखित तेरह वस्तुओं का उल्लेख किया है—

कस्तूरी, कुंकुम, चन्दन, कर्पूर, अगुरु, कुलक, दन्तमस, पटवास सहकार, तैल, ताम्बूल, अलक्तक, अञ्जन और गोरोचन।

योजना या सजावट के अन्तर्गत भवें बनाना, केशों को कमल नाल के रूप में सजाना, जूड़ा बांधना आदि आते हैं। आजकल भी विवाह के समय कश्मीरी वधु के केशों को किसी चमकीले वस्त्र से लपेट कर उन्हें कमल नाल का रूप दिया जाता है। धम्मिल सिर पर बनाया गया ऊंचा और फैला हुआ जूड़ा प्रतीत होता है। चौर-पञ्चाशिका में बिल्हण ने प्रिया के धम्मिल को मयूर के पंखों से अधिक सुन्दर बतलाया है।

प्रकीर्ण अलंकारों के दो भेद हैं — . जन्य, जो शरीर से ही उत्पन्न होते हैं, जैसे पसीना, मधु के मद से उत्पन्न विकार आदि। २. निवेश्य जो बाह्य रूप से गृहीत हों जैसे दूर्वा, अशोकपत्र, जौ का अंकुर, चांदी, त्रपु, शंख, तालपत्र, दन्तपत्रिका, कमलनाल के गजरे हाथ के खिलौने आदि। इन सब अलंकारों का समूह वेष कहलाता है। देश, काल, व्यक्ति की प्रकृति तथा अवस्था के अनुसार इन का विभाग करके यथास्थान प्रयोग करने से ये सौंदर्य की वृद्धि करते हैं।

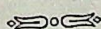
परन्तु वास्तविक सौन्दर्य इन सब अलंकारों या बाह्य प्रसाधनों में निहित नहीं होता। प्रसाधन तो सौंदर्य की वृद्धि ही कर सकते हैं, उसे उत्पन्न नहीं कर सकते। वस्तुतः शोभा को अनुप्राणित करने वाला तत्व तो जीवित है जिसे यौवन कहा जाता है। इसी तत्त्व का वर्णन तीसरे अध्याय में किया गया है। बचपन के बाद आने वाली यह अवस्था जवानी कहलाती है जिसे काम देव का निवासस्थान कहा जाता है।

यह अवस्था अंगों में उभार गठन और विभक्तता लाती है और इसी अवस्था में अनार की सी लालिमा फूट पड़ती है। वयः-सन्धिकाल इस यौवन का आरम्भ होता है। मध्य में प्रौढ़काल होता है। यौवन के आरम्भ में जूड़ा बनाना, अलकभंग, नीविबन्धन, दन्तमंजन, परिष्कार, दर्पण देखना, फूल चुनना, माला गूंथना, जल-

क्रीड़ा, द्यूतक्रीड़ा, अश्लील या गूढ़ बात करना, बिना कारण शरमाना, शृङ्गारशिक्षा आदि चेष्टाएं बार-बार होती हैं ! यौवन के अन्तिम काल में शृङ्गार के अनुभावों का तारतम्य ही श्रेयस्कर होता है ।

सहृदयलीला के चतुर्थ अध्याय में व्यक्ति के निकट रह कर शोभा का उपकार करने वाले तथा उस शोभा को प्रकट करने वाले तत्त्व परिकर का वर्णन है । ये चेतन, अचेतन, चल तथा अचल रूप से चार प्रकार के हैं तथा इन में से प्रत्येक के श्लिष्ट तथा सन्निहित होने से ये आठ प्रकार के हो जाते हैं । गोद में स्थित प्रियतम, घोड़ा, नौकर-चाकर, खिड़की, शामियाना, नौका, छत्र आदि दर्शन कहलाते हैं । व्यस्त अर्थात् अलग-अलग और समस्त अर्थात् इकट्ठे रहने वाले, इस दृष्टि से इनके भी दो - दो भेद हैं ।

इस प्रकार गुण, अलंकार, जीवित और परिकर परस्पर उपकारी होते हुए नारी सौन्दर्य को अभिव्यक्त करते हैं । दस गुण सौन्दर्य को जन्म देते हैं, यौवन उसे अनुप्राणित करता है, अलंकार उसे बढ़ाते हैं तथा निवास, परिवहन, नौकर-चाकर आदि सुविधाएं उसकी अभिव्यक्ति में सहायक होती हैं ।



कश्मीरी साहित्य में हास्य-व्यंग्य

—अवतार कृष्ण राज़दान

किसी भी साहित्य में रस की सत्ता सर्वोपरि होती है। समय की परिवर्तनशीलता के साथ-साथ साहित्य में रस का अपना एक विशेष महत्त्व है। इसमें यह शृङ्गार, करुण, रौद्र, वीर, भयानक वीभत्स, अद्भुत, शान्त, वात्सल्य और हास्य के नाम से सन्निहित होकर रहता है। साहित्य प्रेमियों के लिए ये सभी रस साहित्य में मनोरंजन की पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत करते हैं। फिर भी यदि देखा जाये, हास्य-रस से सिंचित साहित्य से किसी का मनोविनोद ही नहीं होता, बल्कि मन बहल जाता है, स्वास्थ्य में वृद्धि होती है। यही कारण है कि विद्वानों ने हास्य-शृङ्गार को रसराज का सहायक और सखा ही नहीं, बल्कि स्वयं रसराज कहा है।

हास्य के साथ व्यंग्य का होना अनिवार्य है, चाहे वह मधुर हो या तीव्र। किसी भी हास्य कविता में, चाहे वह कितनी ही मनोरम एवं मनोहर क्यों न हो, किसी न किसी रूप में व्यंग्य की करारी चोटें ज़रूर मिलती हैं। कोई भी हास्य रसावतार अपनी काव्य-धारा में सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक-जीवन की सभी प्रकार की विसंगतियों पर चोट कर सकता है। जिस हास्य-साहित्य में अश्लीलता मिले, भौंडापन हो या किसी पर व्यक्तिगत आक्षेप किया गया हो, वह उच्च कोटि के हास्य-साहित्य के अन्तर्गत नहीं

आता, उसी साहित्य को हम हास्य-साहित्य की उच्चकोटि में रख सकते हैं जिस में हास्य - व्यंग्य की सहज सुन्दर धारा का समावेश हो।

कश्मीरी - साहित्य का इतिहास ज्यादा पुराना नहीं है। इसलिए हास्य-व्यंग्य की सफल सृष्टि अधिकतर यहां के लोकगीतों एवं लोकोक्तियों में ही हुई है। विवाह गीत वर-वधू, पंडित, पति-पत्नी इत्यादि के सम्बन्ध में हास्य-विनोद एवं छेड़-छाड़ की जो लहर कश्मीरी लोकगीतों एवं लोकोक्तियों में उठती है, व्यंग्य के रूप में उसकी परिसीमा होती है। उदाहरणस्वरूप हम कश्मीरी - विवाह में गाये जाने वाले उन गीतों को ले लें जिनको 'वनवुन' कहते हैं। इन गीतों में कश्मीरी वनिताए दो टोलियों में बंट कर दूल्हा या दुल्हन के किसी नुक्स या दुल्हन को ससुराल वालों की ओर से कोई गहना न मिलने पर ऐसे तीव्र व्यंग्य कसती हैं कि सुनते ही हंसी की फुहार छूट पड़ती है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

१. नरि चानि विराम्, ज़ंग् चानि अक्युल।
सोरमै कुकिल ज़ीन थौ।

(आपकी भुजाएं खंभों जैसी हैं, टाँगें बहुत छोटी हैं। इसके विपरीत आपने हमारी सुन्दर बिटिया को ले लिया।)

२. पोंपर वुड़रि प्यठ कौंग छखै चारान
वुनि छखै प्रारान गहन् वात्यम।।

(क्या तुम पांपोर के ढलवानों पर केसर के फूल चुनती हो? क्या तुम अब भी इसी प्रतीक्षा में हो कि सुसराल वाले तुम्हारे लिए गहने लायेंगे।)

३. अख है छुअय बालिदांद, बाकै छिअय हखरी।
वअथिय कूरी वोरिव सखरय कर।।

(एक सांड के समान है, शेष गायें हैं। उठो, मेरी प्यारी बिटिया! अब ससुराल जाने की तैयारी कर।)

यह 'वनवुन' (लोक गीत) कहां तक अश्लीलता के मार्ग को

पार करते हैं तथा इनको उच्चकोटि के हास्य-साहित्य में स्थान दे दिया जा सकता है, या नहीं, यह कहना कठिन है। फिर भी जब हम विवाहोत्सव पर कश्मीरी वनिताओं को टोलियों में बंटकर इन गीतों का गायन करते हुऐ सुनते हैं तो हमारे मुंह से हंसी की फुहारें ज़रूर छूटती हैं। पहले 'वनवुन' (लोक गीत) में उस दूल्हा मियां की ओर संकेत है जो निकम्मा है तथा उस चांद सी बिटिया के लायक नहीं जिसके साथ उसकी शादी हो रही है। दूसरे में लड़की के ससुराल वालों की गरीबी पर किया गया करारा व्यंग्य है क्योंकि वे लड़की के लिए गहना लाने में असमर्थ रहे हैं तथा तीसरे में लड़की के सास - ससुर के मोटेपन पर तीव्र व्यंग्य है तथा उसको कहा जाता है कि जाओ, ससुराल में अब इन्हीं व्यक्तियों के साथ घर बसाओ।

जैसा कि हम जानते हैं, कहावतें और पहेलियां ऐसी सटीक उक्तियां होती हैं जो मानव - जीवन के अनुभव सार रूप में, मार्मिक ढंग से व्यंजित करती हैं। इतना ही नहीं, वह जन - जीवन के मनोरंजन के विविध साधनों में भी विशिष्ट स्थान रखती हैं। कश्मीरी कहावतों के अनन्त भण्डार का एक भाग ऐसा है जिसको सुनते ही मन में हास्य घुमड़ जाता है। यह हास्य जितना सात्विक, मनोरम एवं सरस है, उतना ही सचोट भी। इन कहावतों में कभी-कभी अश्लीलता भी मिलती है तथा भौंडापन भी, फिर भी इनको सुनकर या पढ़कर लगता है कि ये सभी की हैं तथा समाज के प्रत्येक व्यक्ति को संबोधित करके रची गयी हैं। उदाहरणार्थ नीचे भावार्थ सहित कुछ कहावतें प्रस्तुत की जा रही हैं—

१. शेरकतिच लेज खेयि होन्यौ।
(सम्मिलित परिवार की रसोई कुत्ते ने खायी है)

२. अनि सुंज़ कवलय खवदायस हवाल्
(अन्धे की पत्नी भगवान के हवाले।)

३. गोर दिवान व्छस-व्छस, कांबरि पछस क्याह सन गव।
(ब्राह्मण छाती पीटता है कि श्राद्ध-पक्ष क्यों समाप्त हो गया)

कश्मीरी साहित्य का आदिकाल (१३वीं शती) अध्यात्मवाद पर आधारित है। इस काल में यहां कई सूफी कवि कवयित्रियां हुई हैं जिन्होंने आत्मा और परमात्मा के साक्षात्कार को विषय बना कर तरह - तरह की रचनाए कीं। साथ ही इन्होंने जीवन की विभिन्न समस्याओं, परिस्थितियों, दशाओं, चरित्रों तथा व्यवहारों पर कड़ी हंसी के साथ व्यंग्य भी कसे हैं। इनके हास्य पदों में गम्भीरता है जो व्यंग्य की तीव्रता लिये हुए हैं। लल्लेश्वरी (१४वीं शती) इसी श्रेणी की एक कवयित्री हुई हैं। वह अपने प्रस्तुत वाख (पद) में मूर्ति पूजा का खंडन करते हुए पण्डितों को समझाती हैं कि जब मन्दिर भी पत्थरों का ही बना हुआ है तथा इसमें शिव भी एक पत्थर के रूप में विराजमान हैं, भला आप ही बताइये वहां किन की पूजा होती है। वाख (पद) द्रष्टव्य है—

दीव वटा, दयूर वटा।
प्यठ बोन छुय इकवाट।
पूज़ जस करख हटो बटा।
कर्मनस त् पोन्यिस संगाठ।

इसके पश्चात् कश्मीरी हास्य - व्यंग्य साहित्य में यहां के सुप्रसिद्ध कवि मकबूल शाह 'कालवारी' का नाम आदर से लिया जाता है। इन्होंने 'गुलरेज़' शीर्षक से एक मसनवी की रचना की है जो मुख्यता दो अध्यायों 'ग्रीसनामा' और 'पीरनामा' पर आधारित है। इसमें इन्होंने हास्य - व्यंग्य की सफल सृष्टि की है। इन्हीं दो अध्यायों के कारण यह मसनवी लोकप्रियता के शिखर तक पहुँच गयी है। कश्मीरी - साहित्य में रहती दुनिया तक यह एक यादगार रहेगी। कश्मीरी भाषा में यह एकमात्र पुस्तक है जो पच्चास बार छप चुकी है। 'ग्रीसनामा' तथा 'पीर-नामा' में कवि ने एक कृषक तथा ब्राह्मण पर तीव्र व्यंग्य कसे हैं। ब्राह्मण को ढोंगी बताया है तथा धर्म के नाम पर लोगों से पैसा ऐंठने वाला चोर कहा है। 'पीरनामा' से एक हास्य पद प्रस्तुत है—

कंगुश्रव रेशस करिथ नुंद्बोन पीरा।
लिबासा रुत गंडिथ ज़न बोड़ श्रमीरा।
ज़ियाफन खेयत छु फातहे जेठरावान।
दलीलौ सीत छु मजलिस मेठ्रावान।

[श्रपनो मूंछों पर कंघी करके एक पीर सुन्दर कपड़े पहने बड़ा श्रमीर दिखाई देता है। ज़ियाफत (भोजन) खाने के बाद कितनी ही देर तक फातहे पढ़ता है तथा श्रपनी मीठी - मीठी बातों से मजलिस (बैठक) में क्या क्या रग लाता है।)

मकबूल शाह क्रालवारी रचित हास्य-व्यग्य से भरपूर ऐसे ही कई शेर हैं जो एम. एल. साधू के श्रनुसार सामाजिक विषमताश्रों श्रौर कुरीतियों पर गहरी चोट करते हैं तथा उन छिछली मान्यताश्रों का जो मनुष्य को सत् श्राचरण से विरत होने के प्रलोभन का शिकार होने देती हैं, एकदम पर्दाफाश करते हैं।

देश की स्वतन्त्रता - प्राप्ति के बाद से कश्मीरी साहित्यिक-क्षेत्र में श्रनेक हास्य के लेखकों तथा मधु व्यंग्यकारों ने पदार्पण किया जिनका क्रम श्राज तक टूटता ही नहीं। कश्मीरी हास्य-व्यंग्य साहित्य को पनपाने में इन्होंने श्रथक सहयोग दिया है। इनके कलाम का कमाल भ्रष्टाचार से चोर बाज़ार तक, श्राज़ादी से बरबादी तक तथा फैशन से राशन तक देखने को मिलता है। मतलब यह कि इन्होंने जीवन के हर क्षेत्र में, हास्य के हर कारण को श्रच्छी प्रकार खोजा है तथा उसपर बे-झिझक श्रपनी कलम चलायी है।

देश में श्राजकल फैशन की सरिता बह रही है जिससे हमारी संस्कृति की मान-मर्यादा ढह रही है। सारा समाज फैशन के पीछे पड़ा हुश्रा है। जिस श्रोर भी देखिए, रंगे-पुते चेहरे श्रौर कपड़ों की प्रदर्शनी लगी है। लोग तंग कपड़ों को पहनना फैशन मानते हैं। कपड़ा कीमती हो या सस्ता, रंगदार हो या सफेद, गर्म हो या सर्द इसको ज़रूर तंग सिलवा कर पहनना है, नहीं तो उनको 'फैशनेबुल' कौन कहेगा तंग कपड़ों पर यहां के तरुण कवि सजूद सैलानी ने श्रपनी मनोरम शब्दावली में यह व्यंग्य कसा है—

हज़रत यथ कथि कग्तिव सिर,
नत् हज़ रोज़ेम वोंजि बोग।
तोहि यथ मज़ छुग्रव ज़ग भरिमच,
यि छा हज पतलून किन् तुतनोर।

[महाशय जी ! कृपा करके मुझे इस बात का रहस्य बताइये, नहीं तो मेरे दिल का बोझ नहीं उतर सकेगा, कि जिस वस्त्र में आपने इन टांगों को भर दिया है. यह पतलून हैं या तुतनोर*]

यह रहा हमारा फ़ैशन, फैशन नहीं तंग कपड़ों से झाँकते अंगों का प्रदर्शन। हमारी युवा पीढ़ी बुरी तरह इसके पीछे भाग रही है। लेकिन आपने उस कवि की स्त्री का क्या सोचा जो फैशन की इस सरिता में डुबकी मारना चाहती है, लेकिन उसके पास पैसे नहीं, साधन नहीं, जिसके द्वारा वह इस फैशन रूपी सरिता में तैर सके। वह अपने पति 'गरीब कवि साहब' से पैसा कमाने के लिए कहती है, विनती करती है, लेकिन उत्तर में उनके शेर सुनते-सुनते थक जाती है। वह इन शेरों को कोसती है। इन्हीं शेरों ने उसके पति को गरीब बना दिया है। ऐसी ही भावभूमि को लेकर यहां के सुप्रसिद्ध हास्य व्यंग्यकार मक्खन लाल 'महु' ने एक ऐसे कवि पर व्यंग्य कसा है जो दिल से गरीब नहीं है, बल्कि आर्थिक रूप से गरीब है। पत्नी पति को यों कोसती है—

छुग्रय नाहक् कुय मगज़न तचर, छुग्रख मूल् फोतिर बाख्वदाह
वनतम भरन् क्याह तमुल रुस पनिन वोलिज रना।
च्य त भेयि शुरेन पांचन वनुम बाथ चोनि खेनि दिमा।
यितिर्नेत् तेलि क्याह ब्याजाह चोन पतिलस मंज सिवा।
किथ् कनि यियम पछ, जाजथम वोलिज म्य च शोया बनिथ।

[आप नाहक मगज-पच्ची क्यों करते हैं, भगवान की कसम, आप तो पागल हैं। आप ही बताइये, चावल के बदले क्या मैं अपने

*कश्मीरी में 'नोर' नली को कहते हैं तथा 'तुतनोर' उस नली को कहा जाता है जिस के द्वारा सीटी बजायी जा सके।

कलेजे को पकाऊंगी ? आपको तथा आपके पांच बच्चों को क्या मैं आप के गीत पका कर खाने को दूंगी। या आपकी कोई रुबाई चाय की पतीली में उबाल कर दूं। मैं आप पर कैसे विश्वास कर सकती हूं, जब से आप कवि बन गये हैं, आपने मेरा दिल जला दिया है।]

इतना ही नहीं, कश्मीरी काव्य मे ऐसी कविनाएं काफी मात्रा में मिलती हैं जो केवल हास्य-विनोद से भरपूर हैं। इनमें व्यंग्य नहीं के बराबर है। इस श्रेणी में अमीन कामिल का नाम उल्लेखनीय है। वैसे तो इन्होंने अपनी कई कविताओं में हास्य-रस का सृजन किया है जिनमें व्यंग्य की तीव्र चोटें भी मिलती हैं, फिर भी इनकी निम्न हास्य कविता बड़ी लोकप्रिय रही है। कविता का शीर्षक है 'खर' (गधा) जिस में इन्होंने एक गधे का वर्णन सजीव एवं सुन्दर शब्दावली में किया है—

कविता	हिन्दी अनुवाद
हेंगन्न - मेंगन रोअ्रस	सींगों के बिना
अोंगुल - दुगुल नुअ्रस	चपटी नाक वाला
न हु गछान दूर	न यह कहीं दूर जाता
न छिस निवान चूर	न इसे कोई चोर चुराता
टांग दीवान ज़ीठ	कितनी लम्बी रेंक लगाता
पननि किन्य बड़ मीठ	अपनी तरफ से मीठा-मीठा
अद् न यिवान ठ्य	फिर भी न यह चुप करता
सास दितस लठ्य	कोई इस पर हज़ारों लाठियां बरसाता
ट्ख छु तुलान तिछ	यह तो ऐसे दौड़ता
क्याह वनै भ् किछ	क्या बताऊं कैसा-कसा
बुख छि ख्यावान छग	लोग भी उसके साथ दौड़ते।
प्रेण छि गछान ज़ग	सुन्दर भी पीले पड़ जाते।
न छुस लगान दब	न वह गिरता है
न छुस गछान रब	न शर्म से मर जाता।

कश्मीरी काव्य में जिन अन्य हास्य प्रणेताओं ने अपनी रचनाओं से योगदान दिया, उनमें उल्लेखनीय हैं—खज़र मगरबी

का 'बीमार नामा', दीनानाथ नादिम का 'माया जाल', इमामउद्दीन मखमूर का, 'गिल द्रायि आसतान'; रहमान राही का, 'मोफीनाम'; गुलाम अहमद फिराक का 'ब्मोरड़ी शिथ' तथा शम्भूनाथ भट हलीम का 'आसन वालेन कुना'। इसके अतिरिक्त नयी पीढ़ी के एक और हास्य लेखक ने अपनी सुन्दर एवं मनोरम हास्य कविताओं से कश्मीरी हास्य-साहित्य को एक नया जीवन प्रदान किया है। इनका नाम है लाल लक्ष्मण। इनकी लेखन-कला विचित्र है। जहां कहीं भी इन्होंने हमारे समाज में खराबी देखी, उसकी कली ही नहीं खोल दी, बल्कि अपनी सरस एवं सजीव शब्दावली में उस पर सटीक चोटें भी कीं। ये कश्मीरी-साहित्य के एकमात्र हास्य कवि हैं जिन्होंने अपनी कविताओं में केवल हास्य रस का ही प्रयोग किया है। इनकी हास्य कविताओं में विशिष्ट है 'खानदर नाम' जो एक वृहत कविता है। इसमें इन्होंने कश्मीरी पंडितों के विवाहोत्सव पर होने वाले व्यर्थ-खर्चों पर चोट की है। इनका बहुत सा काव्य-भण्डार अप्रकाशित पड़ा है जो इस समय यहां के सुप्रसिद्ध कवि मोतीलाल 'साकी' के पास सुरक्षित है। इस समय उनकी कविताओं को प्रकाश में लाने की आवश्यकता है तथा यह कार्य जम्मू व कश्मीर कलित कला, संस्कृति एवं साहित्य अकादमी द्वारा ही सम्पन्न हो सकता है।

गद्य-साहित्य—

कश्मीरी गद्य-साहित्य का इतिहास सन् १९४७ ई० से प्रारंभ होता है। कश्मीरी गद्य में जो कुछ भी लिखा गया है, वह अल्प होने पर भी काफी महत्त्व रखता है। यहां के प्रत्येक गद्यकार ने विभिन्न विषयों पर अपनी कलम चलायी है तथा कहानी नाटक, नाटिका, रिपोर्ताज अथवा गद्य की ऐसी कोई विधा नहीं जिसके द्वारा वे अपने विचार प्रकट न कर सके हों। उदाहरणस्वरूप कश्मीरी कहानी में सामाजिक परिस्थितियों का वर्णन होने के साथ-साथ समाज की गंदगी और असंगतियों पर भी करारी चोटें मिलती हैं। ऐसी ही कहानियों में उल्लेखनीय हैं अख्तर महीउद्दीन की 'दंद वजुन', अमीन कामिल की 'हांनि रहमान', दीपक कौल की 'राधि काकन ब्रॉर' सोम-नाथ जुत्शी की 'मस मधुर', अवतार कृष्ण

राहबर की 'चाय' तथा गुलाम नबी ख्याल की 'कोकर बगावथ'। इन सभी कहानियों को पढ़ - सुनकर हंसी की फुहारें छूट पड़ती हैं।

सन् १९४७ ई० से कश्मीरी नाट्य-साहित्य का विकास तीव्र गति से होने लगा। कश्मीरी नाट्य-साहित्य के क्षेत्र में कई नाटक-कारों ने पदार्पण किया। ये नाटक मूलतः सामाजिक हैं तथा इनमें समाज की विषमताओं एव कुरीतियों पर कसे व्यंग्य भी मिलते हैं तथा हास्य की सफल सृष्टि भी हुई है। ऐसे ही नाटकों में उल्लेखनीय हैं अख्तर महीउद्दीन का 'गावत् मोहताज', सूफी गुलाम अहमद का 'बेछिकठ' तथा सोम नाथ साधू का 'रिहर्सल'। नाटिकाओं में सोम नाथ साधू के 'बबजी' तथा हरि कृष्ण कौल के 'ऐकस्टशन' को कश्मीरी हास्य नाटिका-साहित्य में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। ये दोनों हास्य नाटिकाएं आकाशवाणी के श्रीनगर केन्द्र से प्रसारित हो चुकी हैं।

कश्मीरी नाट्य-साहित्य में यहां के एक हास्य नाटककार पुष्कर भाण का नाम उल्लेखनीय है। आप पिछले १८ वर्षों से 'मचामा' शीर्षक से हास्य नाटक लिखने का कार्य कर रहे हैं। ये सभी रेडियो नाटक हैं तथा आकाशवाणी के श्रीनगर केन्द्र से प्रसारित हो रहे हैं। 'मचामा' नाटक का मुख्य पात्र है माचाम जिसके कई अरमान हैं, इच्छाएं हैं एक बड़ा आदमी बनने की। वह इसके लिए संघर्ष करता है। वह कभी हीरो बनता है, कभी फिटन या टैक्सी चलाता है या कभी कल्पना में चान्द पर चढ़कर वहां की पथरीली जमीन का भ्रमण करता है। जीवन के हर मोड़ पर वह कुछ काम करने के लिए संघर्षरत है परन्तु अन्त में उसे असफलता ही प्राप्त होती है। 'मचामा' क्रम का प्रथम हास्य नाटक 'हीरो मचामा' के एक अंश का हिन्दी-भावानुवाद नीचे प्रस्तुत है। इसमें मचामा अपनी पत्नी खतजी के साथ ऐसे बातें कर रहा है मानो वह किसी फिल्म के हीरो की भूमिका निभा रहा हो। मगर भोली-भाली खतजी उसकी इन बातों को क्या समझे! वह उसको पागल समझ कर रोकती है। एक अंश—

खतजी—हे भगवान ! आप यह क्या कर रहे हैं ?

मचामा—ऐक्टर, ऐक्टर, ऐक्टर ! तुम ऐक्टिंग करना क्या जानोगी। भगवान ने ऐक्टिंग करने की कला केवल हमें बख्शी है। हम एक ऐक्टिंग करना नहीं जानता। (अभिनय करते हुए) ऐ खतजी ! तुम्हारे दांत बताशा कीत रह सफेद हैं, आंखें तरबूज़ के समान, घुंघराले वाल कानुल (कश्मीरी साग) जैसे, नाक इवीर की तरह, कान बैंगन जैसे तथा भौंहें राजमाश (कश्मीरी सब्ज़ी) की तरह हैं। ऐ खतजी ! तुम अपने मां-बाप से साफ-साफ कह दो कि मैं मचामा के साथ शादी करूंगी

खतजी—आज तक मैंने किसके साथ शादी की थी।

मचामा—चुपकर, कसी हो तुम......तुम समझो, यह सब मैं ऐक्टिंग कर रहा था। तुम को रोते-रोते उत्तर में इस तरह कहना था--(स्त्री कण्ठ से) मैं आपके लिए यह दुनिया छोड़ दूंगी, ऐ मेरे मचामा ! फिर यह गीत गाना था—'न यह चान्द होगा, न तारे रहेंगे, मगर हम हमेशा तुम्हारे रहेंगे' इसी को ऐक्टिंग कहते हैं। विश्वास नहीं आया क्या ? फिर तुम को रोना था।

खतजी--मैं क्यों रोती ?

मचामा—मेरे लिये।

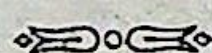
खतजी—(रोते हुए) ओफ ! तुम्हें यह क्हा हो गया ? भगवान की कसम, समझ में कुछ नहीं आता। क्या तुम को सिरदर्द है ?

मचामा—ओफ ! किससे पाला पड़ा है मुझे।

सन् १९६६ ई० में 'काशिर असन त्रायि' शीर्षक से अमीन कामिल ने एक पुस्तक का संपादन किया जिस में इन्होंने कश्मीरी गद्य एवं पद्य में लिखी गयी हास्य रचनाओं को एकत्र करके एक गुलदस्ते के समान जनता के सामने रखा। यह कश्मीरी हास्य-साहित्य पर लिखी गयी एकमात्र पुस्तक है।

स्पष्ट है कि कश्मीरी साहित्य में हमें शाश्वत एवं सामयिक दोनों प्रकार की समस्याओं पर करारी चोटें मिलती हैं। यहां के हास्य-लेखकों का सदा यही प्रयत्न रहा है कि वे छिछली शिष्टता तथा मान्यता का विरोध करें और वे इस कार्य में पूर्णरूप से सफल रहे हैं। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार भी—'सच्चा व्यंग्यकार समाज की कुरीतियों को सही रूप में देखता है और अपने व्यंग्य-वाण से उसे बेधता रहता है। उसका उद्देश्य समाज का परिशोधन होता है। वह व्यक्ति को कष्ट नहीं पहुँचाना चाहता है, बल्कि उन छिछली मान्यताओं का, जिसमें वह हर समय उलझता रहता है, एक दम पर्दाफाश करना चाहता है।'

इस दृष्टि से यदि देखा जाये तो कश्मीरी हास्य लेखकों की हास्य-व्यंग्य रचनाएं कश्मीरी साहित्य के इतिहास में अधिक महत्व रखती हैं। इन रचनाओं में तीव्र व्यंग्य के साथ-साथ सफल हास्य की सृष्टि भी हुई है।



डोगरी पुन्छी लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन—

गोवर्धन शर्मा

यदि हम सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो लोक का अर्थ जन समुदाय से है। हम यूं भी कह सकते हैं कि लोक की सत्ता विधाता के विश्व की तरह फैली हुई है। ऋग्वेद में भी 'लोक' शब्द की सत्ता को स्वीकार किया गया है। अब प्रश्न पैदा होता है कि जिन लोक गीतों ने मानव जीवन के हृदय में उथल पुथल की भावना को पैदा किया है, जिनकी मूल छाया में आकर्षक होकर मानवीय जीवन उद्वेलित होता रहता है, उनका आदि स्रोत कहां अन्तर्निहित है? इसका उत्तर देना कठिन है।

अगर कोई मानवीय ज्ञान के महान भण्डार, इतिहास की महान पुस्तकों का, अध्ययन करे तो भी लोक गीतों के सृजन की तिथि निश्चित नहीं हो सकती। मनुष्य के हृदय में जब भी सुख-दुःख का संचार हुआ होगा तभी गीतों के अज्ञात स्वर अधरों पर गूंज उठे होंगे। लोक गीत वस्तुतः किसी देश की जनता के उद्गार होते हैं। वह उनकी हार्दिक भावनाओं के सच्चे प्रतीक हैं। यदि किसी देश की सभ्यता का अध्ययन करना हो तो सब से पहले वहां

के गीतों का अध्ययन करना परमावश्यक होता है। लोक गीत जन समुदाय की वस्तु हैं। अतः उनमें जनता का हृदय सूत्र-बद्ध होता है। गांव के अशिक्षित कवि के मन में जो भी भाव उठते हैं वह उनको अटपटी पंक्तियों में गाने लगता है और कुछ काल के पश्चात वह लोक गीत का रूप धारण कर लेते हैं। अतः इस कविता में स्वाभाविक स्वच्छन्दता होती है जो काव्य कला में निपुण कवि में नहीं होती। भारतवासियों का जीवन सदा संगीतमय रहा है। लोक गीत अथवा ग्राम गीत का एक मात्र उद्देश्य "स्वान्तः सुखाय" होता है। दूसरे शब्दों में लोक गीत जनता की सम्पत्ति होने के कारण उनकी संस्कृति के एक मात्र दर्पण हैं।

अपनी जन्म-भूमि पुन्छ के लोक गीतों ने मुझे आकर्षित किया है। पुन्छ जम्मू प्रान्त के उत्तरी छोर पर स्थित है। ऐसी पवित्र भूमि जो चारों ओर से पर्वतमालाओं से घिरी हुई है और जिसके चारों ओर की प्रकृति की छटा को निहारता रहा हूँ, ऐसी गगन चुम्बी पर्वतमालाओं में निवास करने वाले पुन्छी लोग समयोचित गीत गाते हैं और आनन्द अनुभव करते हैं।

डोगरी और पुन्छी लोक गीतों में अधिकांशतः समानता है। अन्य संस्कारों में भी एकरूपता पाई जाती है। यदि हम अपने पुनीत महाकाव्य रामायण को देखें तो प्राचीन काल में जन्म और विवाह के समय पर नाच-गान होता था। जैसे भगवान राम के जन्मोत्सव पर अप्सराओं और गन्धर्वों के नाचने का उल्लेख मिलता है।

जगु : कलच गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरो गणः।
देव : दुन्दुभयो : वेदुः पुष्प वृष्टि रवात्पतत ।।

(रामायण बालकाण्ड)

इसी प्रकार महाराजा दलीप के महल में अज के उत्पन्न होने पर वेश्याओं द्वारा गाने का वर्णन महाकवि कालिदास ने किया है—

सुखश्रवा मंगलतूर्य निस्वनाः
प्रमोद नृत्यै सहवार योषिताम्।

न केवल सद्मनि मागधीपतेः
पथि व्यजृम्भन्त दिवौकसामधि ।। "रघुवंश । ३ । १६ ।।

मैंने केवल विवाह पर गाये जाने वाले गीत तथा विरह सम्बन्धी कतिपय गीतों को तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से और पुन्छी लोक गीतों की स्थानीय विशेषताओं को दिखाने के लिए उदाहरण के रूप में चुना है। पुन्छी में कुछ ऐसे गीत हैं जो पूरे के पूरे डोगरी लोक गीतों से मिलते हैं ही परन्तु स्थानीय विशेषता को भी लिए हुए हैं। पुन्छी में लड़की के सुहाग की झलक :—

इस बेलै कुन जागे, राजे धर्मे ना बेला,
इस बेलै बावल जागे, जिसदी कन्या कुमारी
बावल दान भी देन्दा, रुपा भी देन्दा।
सोना भी देन्दा, ते कन्या दा दान करैन्दा ।।

यह वेला धर्मराजे की वेला है। इस समय कौन जाग रहा है। इस समय कन्या का पिता जाग रहा है। जिस की कन्या का विवाह होना है। इस समय कन्या का पिता सोना-चांदी दान कर रहा है और साथ ही कन्या का दान भी दे रहा है।

डोगरी—

इस बेलै कुन्न जागे वे, राजे धर्मे दा बेला,
इस बेलै बावल जागे वे, जेदी कन्या कुमारी।
बावल दान बी दिन्दा, सुन्ना बी दिन्दा
रुपया बी दिन्दा—ते कन्या दा दान करैन्दा ।।

इस गीत में दिन्दा, कुमारी और जिसदी में पुन्छी की स्थानीय विशेषता है। शेष एक जैसा ही है।

और भी—

मेरे बावल दे हत्थ जल थल गड़वा,
गंगा जल पानी ते कुशा दी डाली ए राम।
सोने दा दान बावल नित उठ करदा।
सवेर उठ करदा—कन्या दा दान कर्दे हे राम।

कपली दा दान वीर नित उठ करदा—भैनां दान कदें हे राम।
चूड़े दा दान मामा नित उठ करदा—कन्या दान कदें हे राम।

मेरे पिता जी के हाथ में गंगा जल का लोटा है और कुशा भी है। वह प्रतिदिन सोने का दान तो करते हैं पर कन्या का दान कभी ही। श्यामवर्ण वाली गाय का दान भाई प्रतिदिन करता है पर बहन का दान कभी कभी ही करता है। इसी प्रकार मामा भी चूड़ा दान करते हैं लेकिन कन्या का दान कभी कभी ही करते हैं।

इस गीत में और डोगरी गीत में पूर्णरूप से समानता है।

पुन्छी सुहाग—

मेरी बागां दी कोयल कुधर चली,
बावल मेरे धर्मी धर्म दित्ता,
उच्च नभावन में चली।

विवाह के उपरान्त जब लड़की विदा होती है। उससे सहेलियां प्यार भरे शब्दों में पूछती हैं कि हमारे बागों की कोयल कहां जा रही है। वह उत्तर देती है कि मेरे पिता ने धर्म दे दिया है, उस धर्म का पालन करने के लिए मैं जा रही हूँ।

डोगरी—

बोल नि मेरिये बागां दिये कोयले,
बाग छोड़ी बन की चली
बावल मेरे ने वचन जे कीता
वचन दी बद्धी में चली॥

दोनों गीतों में भाव और शब्द साम्य है। केवल शब्दों का आगे पीछे होना ही दिखाई देता है।

पुन्छी—

बेटी चंजन दे ओह्‌ले ओह्‌ले कियां खड़ी,
जाई चंजन दे ओह्‌ले ओह्‌ले कियां खड़ी।

मैं ते खड़ी सां बावल जी दे पास, बावल वर लोड़िये ॥
बेटी कया जया वर लोड़िए ?
जियां चन्न चन्ना बिच चन्न तारे।
बिच तारेयां कन्हैया वर लोड़िये।
वर मेरा श्रीराम होवे छोटा देवर लच्छमन होवे,
सस मेरी मात कोशल्या सौरा दशरथ होवे।
मे तां मंगदिग्रां अयोध्या जी दा राज पंगूड़े बैठी हुकम करां।

मां बेटी से पूछती है—तू क्यों चजन वृक्ष के पीछे खड़ी थी। बेटी उत्तर देती है मैं तो अपने पिता जी के पास खड़ी थी। मैं कह रही थी मेरे लिए वर ढूण्ढो। पिता ने कहा कैसा वर हो। मैंने कहा, अच्छा वर हो, जैसे तारों में चान्द होता है। भगवान राम जैसा वर हो और लक्षमन जैसा देवर हो ताकि मैं अयोध्यावासी रामचन्द्र की पत्नी सीता के समान झूले पर बैठ कर राज्य करूं।

डोगरी—
बेटी चंजन दे ओह्‌ले ओह्‌ले क्यों खड़ी
मैं तां खड़ी आं बावल जी दे पास
बावल वर लोड़िये।
बेटी किया जया वर लोड़िये
ज़ियां तारेयां विच चन्न चन्ना बिच कान्ह,
कन्हैया वर लोड़ियै।
वर मेरा सिरी राम, देवर लच्छमन होवे,
मात कौशल्या होवे सस, सौहरा दशरथ होवे।
मैं तां मंगदियां अयोध्या जो दा राज पंगूड़े बैठी हुकम करां

दोनों गीतों में शब्द साम्य और भाव साम्य है। छन्द भी एक जेसा है। लेकिन पुन्छी में शब्द "कया" स्थानीय विशेषता रखता है। डोगरी में किया आता है। हां के स्थान पर आँ है। शेष समान है।

पुन्छी—
घोड़ी चड़नेयाँ वीरा तेनू गर्मी आई,
पखा झोलदे भाई हत्थ घमाँदी माई,

बेलां देन्दे भाई ।
सेहरा लावया वीरा तेनू गर्मी आई,
पखा झोलदियां भैनां बेलां देन्दी माई ।।

अर्थ :—चौकी पर बैठने वाले वीर तुम का गर्मी आ गई है। भाई पंखा झोल रहे हैं, माता बेल दे रही है। सेहरा लगाने वाले वीर तुम का गर्मी आ गई है, बहनें पखा झुला रही हैं और माता बेल दे रही है।

डोगरी ;—

सेहरा लान्दे लाड़े गी गर्मी आई,
पखा झोलदियां भैनां सलामा करदे भाई ।
घोड़ी चढ़दे लाड़े गी गर्मी आई,
पखा झोलदियां भैनां सलामां करदे भाई ।

इस गीत का अर्थ पुन्छी लोक गीत से मिलता है। भाव तथा शब्द साम्य भी स्वाभाविक है। ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों गीतों में समानता है। केवल स्थानीय विशेषता तो प्रत्येक स्थान की होती है। और भी :—विवाह के अवसर पर घोड़ियां इस तरह गाते हैं—

चौकी जुध्या तूं आई ऐ
लगी स्हानूं देर ।
तुम लायो मेरे वीरा,
लगी स्हानूं देर ।
राजे जनक दे जाना,
लगी स्हानूं देर ।
जाई के धनुष उठाना,
लगी स्हानूं देर ।
डोली लेई घर आना,
लगी स्हानूं देर ।

यह चौकी अयोध्या से आई है, इस लिए हमें देर लगी है।

वहन कहती है भाई क्या तुमने यह चौकी अयोध्या से लाई है। तुमने राजा जनक के घर जाना है और धनुष को उठाना है, उसके बाद तुम ने डोली घर ले आनी है।

और भी— स्हाड़ै बेड़ै आ बनआं कमल फुले ठण्डी छाँ,
कपड़े तुगी में देनीं आं सेहरा देवे तेरी मां,
तेरे बेड़े नीं आना नवीं बन्नी घर जाना।

कोई लड़की अविवाहित युवक को कहती है—तुम हमारे घर आओ कपड़े मैं तुम को देती हूं, सेहरा तो तुम्हारी मां ने देना है। वह उत्तर देता है मैंने तो तुम्हारे घर नहीं आना है, मैंने तो नवेली कुमारी को व्याहने जाना है।

डोगरी :—

स्हाड़े बैड़े आ बन्नेआं,
कमल फुल्लै ठण्डी छां,
कपड़े तुगी आऊं दिन्निआं।
सेहरा देवे तेरी मां
थवाड़े बेड़े नई आना
नमीं बन्नी घर जाना॥

पुन्छी में बरात के जाने पर लड़की वाले इस प्रकार की 'सिटनी' देते हैं—

असें कानूं रिद्दी रब्बा मां छोलेआं दी दाल,
जीजा लम्मा होई होई चट्टे मां छोलेआं दी दाल।
नाले माऊ गी भी सद्दे मां छोलेआं दी दाल,
नाले भैनूं गी भी सद्दे मां छोलेआं दी दाल॥

और भी—

खुए ते बीबी बैठिये मल मल पैर न धो,
बागीं चम्बा खिल रेआ बैठी हार पिरो।
माता नि सुन मेरिये मेरे बावल नूं समझा,
धिआं होइयां लटबाँबरियां किसे राजे दे लड़ ला।

यौवन से ओत-प्रोत कोई युवति विवाह के लिए बड़ी अधीर है, वह पांव धो रही है। माता उसको देख कर कहती है, कि तुम इतनी अधीर क्यों हो। बाग में चम्बा खिल रहा है तुम बैठ कर हार बनाओ। लड़की अधीरता के स्वर में कहती है। हे माता ! तुम पिता जी को समझाओ क्यों कि लड़की युवावस्था को प्राप्त हो चुकी है अतः उस का विवाह कर देना चाहिए।

अनमेल विवाह की तुलना देखें।

पुन्छी—

युवति मां से कहती है कि तुम ने मुझे क्यों जन्म दिया। क्यों मेरा विवाह बुड्डे के साथ कर दिया :—

माए नीं सुन मेरिये तुद् कियां मैनूं जाया,
न तुद् मैनूं अकल सिखाया न तुद कोल बठाया,
तुद जियां वे होगियां मावां मैनूं बुड्डे दे लड़ लाया।

डोगरी—

आप बड्डी वर छोटड़ा बीबा,
मां-पैं दित्ता लड़ लाई ओ॥

माता पिता ने जवानी में लड़की का विवाह किसी कारण-वश कर दिया है। वह कुएं पर पानी भरने गई हुई है वहां पर एक सुन्दर युवक उसकी अधीर एवं गम्भीर दशा देख कर, इसकी इस दशा का कारण पूछता है। जान लेने पर उस को सोने और कपड़ों का प्रलोभन देता है। लेकिन डुग्गर देश की वह विवाहिता अपनी मान-मर्यादा को दृढ़ रखती हुई, उसे बुरी तरह ठुकराती है, उसके मन में आशारूपी किरण है, कि आज उसका पति अगर छोटा है तो कल वह जवान हो जायेगा। इसको गीत के रूप में देखें—

खुए ते खड़ोतिये गोरिए केंत होइएं दिलगीर ओ,
जां तेरी सस लड़ाकड़ी गोरिए जां तेरे मापे नीं दूर ओ।
नईं मेरी सस लड़ाकड़ी गबरू नईं मेरे मापे न दूर बो।
आप बड्डी वर निकड़ा गबरू, मापेआं दित्ता लड़लाई बो।

छुड़ी दे तूं निकड़े दा साथ चली पो सपाइयां दे नाल ओ।
सुन्नेआं करां तुगी पीलड़ी गोरिए मोतियां जड़त जड़ाई ओ
अग्ग लगे तेरे सोनड़े वे बीबा, मोतियें नदिया रड़ाई वे।
अज निक्का कल बड्डा बीबा, दिनो-दिन जोत सवाई वे।

विरह गीतों में समानता की झलक—

नायिका अधीर मन से गाती है।

चन्न वो माड़ा चढ़या ते नक्कियां थीं ओले
पट्टी बो सुट्टां नक्कियां चन्न माड़ा बोले
ओए नीं अफसोसिया चन्न मिली जायां।

और भी—

दर्शी दे बनां बिच गमेंया माडा देश ओ
इक धब्ली जिन्दड़ी दुआ परदेस ओ
लगी कैंची दिले नीं दिल डाडा तंग ए
रब्ब माड़ा संग ए ओ लगे कैंची दिले नी।

नायिका पति की चान्द से तुलना करती है कि मेरा चान्द पहाड़ की चोटी की दूसरी ओर चढ़ा है। मेरा दिल प्रेरित करता है कि इन चोटियों को उखाड़ डालूं ताकि मेरा बिछुड़ा हुआ चान्द मुझे मिल जाये।

और भी —

दर्शी नामक बन है उसमें मेरी चादर गुम हो गई है। एक तो मैं अकेली हूँ और दूसरा मेरा कन्त परदेस में है, अतः दुःखी हूं। भगवान के सिवाय और कोई सहारा नहीं है, उसको इस प्रकार लग रहा है जैसे उसका मन टुकड़े-टुकड़े हो रहा है—

और भी झलक देखिए—

दर्शी दे बनां विच छिकदिआं आरी,
डाडा अरमान ए मिल जान्दी बारी।
लगी कैंची दिले गी दिल डाडा तंग ए,
मुन्शी दी न .ानी बीनीं (कलाई) नाल बंग ऐ।

दर्शी के जंगल में आरी से वृक्ष काट रही हूं। मेरे मन में तेरे मिलने की अभिलाशा है। हे मेरे प्रेमी ! आखरी बार तुम मुझ से मिल के जाना। मेरे दिल को जुदाई रूपी कैंची काट रही है।

डोगरी में :—

सौन म्हीने दिये बदलिये—
कैत लाइयां नीं फुहारां ?
सज्जनें बाझा चित नीं लगदा,
जम्मुआं खड़कन तारां—

और भी—

घिरी घटा घनघोर-ठण्डियां बूंदां पेइयां,
आये नीं चित चोर, ठण्डियां बूंदां पेइयां।
बागें बगीचें बुलबुल बोले धारें सुन्दर मोर
गासा गीत पपीहा गांदा जाड़ें मस्त चकोर
ठण्डियां बूदां पेइयां—

पुन्छ में माहिया विशेषकर गाया जाता है। माहिया कई प्रकार से गाया जाता है। कभी विरहिणी अपने पति की याद में गाती है और कभी देश प्यार के लिए—

गल गानी पा माइया बिच परदेसां दे,
मैनूं सट के न जा माइया विच परदेसां दे।
गल गानी पंज लड़ियां पिच्छा तेरा नईं छोड़ना,
भावें लग जान हत्थकड़ियां।

प्रेमी की याद में प्रेमिका का वर्णन—

कोठे त डब्ब काले आखो मेरे माइयेगी
लड़ लाआं दी लाज पाले।
अशमानी पंज टिक्कियां ससू कोल नीं बसना
माऊ पिऊ दूर दित्तियां।
दो पत्तर शहतूतां दे आशकां ने नीं मिलना,
मन्दे हाल माशूकां दे।

गल गानी टिके टिके उठ बालो निकल चलां,
केड़े रोन्दे नि निक्के निक्के ।

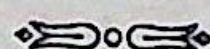
नायिका द्वारा झिड़कियां मिलने पर—
गल गानी दो लड़ियां ।
झिड़कां न दे सोहनियें परदेसी दो घड़ियां ।
चिट्टा चोल डब कीता,
गालियां न कड बालो मुसाफर रब्ब कीता ।

पुन्छी— विरह गीत की झलक—
मेरे चरखे देया महरमां,
मेरे वत्नें देया पखेरुआ,
सोहनी बोली बोल्यां ढोला ।
मेरा बावले नेत्रां अन्दरा,
इन्नां भाभियां चाढ़या जन्द्रा
जियां नींद परदेसिया ढोला ।
झुल्ल झुल्ल नीं शहरें नी कनके
झंगझुल्ले ते चूढ़ा मेरा छनके
नत्थ मेरी डोगरी ढोला ।

नायिका अपने नायक को स्मरण करते हुए कह रही है कि तुम मेरे मन के तथा मेरे देश के पक्षी हो, तुम मीठी बोली बोलना। अपने पिता के घर को अधीर होकर कह रही है कि इन भाभियों ने तो सब कुछ अपने अधीन कर लिया है अब विवाह से पूर्व का अधिकार नहीं रहा। मुझे तो अब तुम पर ही भरोसा है। तुम आकर मीठी बोली बोलो। वह शहर की गन्दम को लहराने के लिए कहती है और गन्दम के लहराने के साथ उसका नया पहना हुआ चूड़ा भी छनकता है। वह पति से मिलने के लिए लालायित होकर अपनी डोगरी नत्थ की भी प्रशंसा करती है—

डोगरी में—
मनैं देया महरमा,
घरें पायां फेरा ।

इन गीतों की तुलना से हमें पुन्छी और डोगरी गीतों की समानता का पता चलता है। जम्मू से १५६ मील दूर पीरपंचाल के रमणीक तथा पहाड़ी प्रदेश में नववधु की तरह प्राकृतिक घूंघट पहने हुए पुन्छ की धार्मिक धरती पर पुन्छी लोग अपनी प्राचीन संस्कृति को संजोए हुए। आनन्द विभोर होकर समय समय पर गीत गाते हैं। इसके अतिरिक्त जीवन की मिठास से भरे विविध चित्रों को भी प्रस्तुत करते हैं। लोक गीतों के अध्ययन से प्राचीन एवं अर्वाचीन सभ्यता का पता चलता है। लोगों के धार्मिक संस्कारों का विशेष रूप से पता चलता है। निष्कर्षता, डुग्गर देश जो पुन्छ से कांगड़े तक फैला हुआ है, एक ही प्रकार की संस्कृति की झलक को प्रस्तुत करता है।



इतिहास और काव्य का सम्बन्ध

—डॉ० निजाम उद्दीन

इतिहास का अर्थ है—'इति - ह - आस' अर्थात् ऐसा हुआ। इतिहास घटना शृङ्खला है। काल अथवा परिवर्तन के धागों में ही घटनाओं के पुष्प अनुस्यूत होते हैं। अतः इतिहास घटनाओं की माला है। संसार की प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है, स्वयं मानव-जीवन भी परिवर्तन की कहानी है। जैसे किसी वस्तु की वर्तमान स्थिति के साथ उसकी कोई न कोई विगत स्थिति भी अवश्य रहती है, वैसे ही मानव-जीवन की वर्तमान स्थिति उसकी अतीत स्थिति में सम्पृक्त रहती है। अतीत और वर्तमान की निरन्तर अनुभूति ही ऐतिहासिक चेतना है*। प्रत्येक समाज की एक अतीतावस्था होती है, समाज की इसी अतीतावस्था का यथार्थ परिज्ञान इतिहास द्वारा सुलभ है। राष्ट्र के उत्थान - पतन, मानव - जाति की प्रगति के अनुभव और उत्कर्षापकर्ष से मनुष्य अवगत होता है। मनुष्य अनुभव द्वारा पुष्कल ज्ञानराशि बटोरता है। इतिहास उसे वह अनुभव प्रदान करता है जिसके सहारे वह वर्तमान को अधिक व्यवस्थितपरायण और भविष्य को उज्ज्वल बनाता है। वस्तुतः इतिहास गत्यात्मक और द्वन्द्वात्मक दोनों है। वह समाज के अतीत

---

*अज्ञेय—त्रिशंकु, पृ० ३१

का संघर्षात्मक और द्वन्द्वात्मक तथ्यपरक आख्यान है। वह केवल 'खंडित पाषाणों का अजायब-घर' नहीं है, केवल 'शव-साधना' भी नहीं है हमें उन ईंट-पत्थरों से, भग्नावशेषों से एक स्फूर्ति और चेतना प्राप्त होती है। वह व्यष्टि से अधिक समष्टि का दर्पण है, उसकी संस्कृति का द्योतक है। वह साहित्य-सृजन का आधार भी है। इतिहास के प्रांगण में ही साहित्य-सृजना होती है। कवि इतिहास की शरण अवश्य ग्रहण करता है परन्तु अतीत के साथ भविष्य की संभावनाओं पर भी दृक्पात करता है। इस रूप में काव्य साहित्य की अपेक्षा अधिक दार्शनिक सार्वभौमिकता को प्रस्तुत करता है[1]।

इतिहास का जीवन के लिए विशेष महत्व है। ऐतिहासिक पात्र और घटनाएं हमारे लिए प्रेरणा - स्रोत बनती हैं। वे राष्ट्रीय चेतना उद्बुद्ध कर धर्म और संस्कृति के पुनरुत्थान का पाठ पढ़ाते हैं। आज भी इतिहास हमें अहिंसा, दया, ममता, उदारता, सहिष्णुता, सह-अस्तित्व जैसे अनेक मानवीय आदर्श प्रदान करता है जो हमारे राष्ट्र के राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय आदर्श बने रहे हैं[2]। अस्तु, इतिहास के प्रति मनुष्य में रागातमक भावना पाई जाती है। मनुष्य प्रकृतितः जिज्ञासु है। वह आत्मविस्तार और आत्माभिव्यक्ति करता है। इतिहास अतीत के रूप में झलकता है और इस साहित्य का एक अंग है। समाज एकता और अनेकता, व्यक्ति और समूह, समान और विविध का संगम है[3]। ऐसा समन्वयात्मक कार्य शुद्ध रूप से साहित्य द्वारा सम्पादित होता है। हमारे उद्देश्य, आदर्श-मूल और परमार्थ इतिहास में प्रकट होते हैं। व्यक्ति और समाज के जीवन में, हमारी इच्छाओं में, आकाँक्षाओं में, चेष्टाओं में, संघर्षों में, हार-जीत में, उन्नति-पतन में, इनका प्रादुर्भाव होता है।

---

1. The true difference is that one relates what has happened, the other what may happen. Poetry, therefore, is a more philsophical and higher than history, for poetry, tends to express universal, history the particular. (M. Dixen, Eng. Epic & Heroic Poetry, P. 123.)
2. डॉ० रामगोपाल सिंह चौहान : आ० हिन्दी साहित्य, पृ० 253
3. सं० डॉ० सावित्री सिन्हा—अनुसन्धान की प्रक्रिया, पृ० १६५

इतिहास का ज्ञान आध्यात्मिक प्रेरकों का ज्ञान है[1]। ऐसा प्रेरक ज्ञान काव्य द्वारा रागात्मक रूप में प्रदान किया जाता है। किन्तु इतिहास तथ्यपरक अधिक होता है और निश्चित रूप से वह अतीत का वैभव होता है। मनुष्य संदिग्ध और अनिश्चित भविष्य को उज्ज्वलता प्रदान करना चाहता है, वर्तमान के संघर्षों को अभिभूत करना चाहता है, साहित्य एवं काव्य मनुष्य को ऐसा करने के लिए अमोघ शक्ति प्रदान करते हैं। इतिहास यथार्थवादी जीवन का प्रस्तुतीकरण है और काव्य यथार्थ से अधिक आदर्शवादी जीवन की अभिव्यक्ति है। काव्य सौंदर्य-स्रष्टा और द्रष्टा दोनों होता है। जिस प्रकार भूमि, जल और वायु के रसायनिक तत्वों को ग्रहण कर वृक्ष प्रकृति के सौंदर्य की सृष्टि करते हैं, उसी प्रकार कवि और कलाकार इतिहास के तत्वों से सौंदर्य की सृष्टि करते हैं[2]। इतिहास एक ऐसी उर्वरा भूमि है जिस से खाद-पानी ग्रहण कर अनेक काव्य-पौधे पुष्पित-पल्लवित होते हैं। घटनाओं, पात्रों आदि का शुद्ध ऐतिहासिक वातावरण सौंदर्यपरक, रागात्मक व्यक्तिकरण ऐतिहासिक काव्य द्वारा राष्ट्रीय संस्कृति और मानवीय जीवन की गहन गम्भीर अभिव्यक्ति होती है। अतीत के गह्वरों का उद्घाटन तो उसमें होता ही है, साथ ही अप्रत्यक्ष रूप में समसामयिक परिस्थितियां एवं युगबोध भी मुखरित होते हैं। इतिहास इतिवृत्तात्मकता की परिधि में परिबद्ध रहता है, लेकिन ऐतिहासिक काव्य में इतिवृत्तात्मकता पर अत्यल्प ध्यान दिया जाता है, उसमें मौलिकता का वैभव अधिक होता है। ऐतिहासिक काव्य में 'किंकुर्वन्ति' के साथ 'किंविचारयन्ति' का बोध सन्निहित रहता है। इतिहास केवल समाज की दर्पणमूलक प्रतिमा प्रस्तुत करता है। काव्य में समाज का कलात्मक चित्र प्रस्तुत किया जाता है। वह समाज का वाह्य रूप - वेशभूषा आदि का ही उल्लेख नहीं करता, अपितु समाज की नाड़ी पर उंगली रखकर उसके स्पंदन का भी अनुभव करता है। उसकी आन्तरिक दशा, विचारधारा, संस्कृति, ईर्ष्या, क्रोध, प्रेम,

1. सं० डॉ० सावित्री सिन्हा—अनुसंधान की प्रक्रिया, पृ० १६४
2. डॉ० रामानंद तिवारी : सत्यं-शिवं-सुन्दरम् (भाग १) पृ० ४०३

शृङ्गार आदि मनोभावों को प्रस्तुत करता है। समाज की समस्याओं का, जीवन-दर्शन का, भौतिक - आध्यात्मिक प्रगति का सच्चा बिम्ब काव्य में ही परिलक्षित होता है। काव्य के अवलोकनोपरान्त समाज की समृद्धि का परिज्ञान तो हो ही जाता है, साथ ही उसकी अनुभूति और संवेदना की गहराइयों की थाह भी सहजता ही ली जा सकती है। इतिहास में सूक्ष्म निरीक्षण की क्षमता का अभाव है और इसके मुख्यत: दो स्पष्ट कारण हैं—(१) सौंदर्यानुभूति, (२) कल्पना। इतिहास सौंदर्यानुभूति की अमृतधारा से अभिसंचित नहीं होता, यह गौरव तो काव्य को ही प्राप्त है। हां, एक सीमित कल्पना की योजना उसमें अवश्य मिलती है। लेकिन कविता में कल्पना का जो विलास - वैभव तितलियों-सा मृदुल पंख फड़फड़ाता है, वह इतिहास में अनुपलब्ध है।

इतिहास, सत्य और कल्पना—

शुद्ध इतिहास में सत्य का आधिक्य रहता है, कल्पना की स्थिति नाम मात्र ही होती है। काव्य में सत्य और कल्पना दोनों का मणिकांचन संयोग रहता है। काव्य में ग्रहीत सत्य जड़ नहीं हो सकता। जीवन के तथ्य, तत्व और सिद्धान्त काव्य का उत्पादन बनकर प्रकाश के समान तरल बन जाते हैं। इस तरलता के कारण ही सत्य के तत्व - परमाणु प्रकाश - किरण की ऋजुगति के समान काव्य की प्रसादमुखी अलक्ष्य भंगिमाओं में कुंचित होते हुए भी संकुचित बने रहते हैं। सत्य की तरलता ही सत्य की ऋजुता और सुन्दरम् की व्यंजना काव्य में समन्वय का साधन बनती है[1]। काव्य का सत्य एकाकी नहीं होता, उसमें सुन्दरम् और शिवम् का समन्वित रूप भी विद्यमान रहता है। इतिहास में वस्तुगत सत्य की अभिव्यक्ति होती है। इतिहासकार सत्य का स्रष्टा नहीं, द्रष्टा है। वास्तव में जिस सत्य की ओर यहां इंगित किया जा रहा है वह एक व्यापक तत्व है, उसी में तथ्य का यथार्थ भी संश्लिष्ट है। यथार्थ में वास्तविकता की न्यूनता और तथ्य में उसकी प्रचुरता

---

1. डॉ० रामानन्द तिवारी—सत्यं - शिवं - सुन्दरम् (भाग १) पृ० २८८—२८९

होती है। तथ्य वस्तु प्रधान होता है। तथ्य का यही वस्तुनिष्ठ रूप इतिहास में अत्यधिक मिलता है। काव्य में यथार्थ का लक्ष्य अंगीकार नहीं किया जा सकता, उसका क्षेत्र इतिहास है। इतिहास की विशेषता है कि वह घटनाओं का कालानुक्रम विवरण प्रकट करे। ये घटनाएं कालानुक्रम पर आधृत होने के कारण तथ्यात्मक होती हैं। जहां कवि इन घटनाओं की सापेक्षता में अवरोध उत्पन्न करता है, वहां इतिहासकार कल्पना का किंचित प्रयोग कर उस अवरोध का निराकरण कर देता है। इतिहास अतीत का लेखा-जोखा तथ्यात्मक रूप में प्रस्तुत करता है। इस प्रकार वह गड़े मुर्दे उखाड़ने का ही काम करता है। किसी दुर्ग के भग्नावशेष मात्र से, शिला-लेखों, दस्तावेजों, भित्तिचित्रों, मूर्तियों आदि से तत्कालीन सामाजिक स्थिति का यथार्थ रूप इतिहास द्वारा सुलभ है। वहां सत्य का वाह्यरूप ही अधिकांशत: प्रोद्भासित होता है। सत्य के आन्तरिक, अनुभूत्यात्मक रूप (शिवं और सुन्दरम् से सम्पृक्त) का भावात्मक चित्रण काव्य के रुपहले पृष्ठों में सुलभ होता है। किसी राजप्रासाद का भग्नावशेष उसके ऐतिहासिक रूप का द्योतक है और उस प्रासाद का जलाशय में पड़ा तरल बिम्ब ही ऐतिहासिक काव्य का मौन रूप है।

इतिहास में कल्पना, 'व्योम कुंजों की परी' बन कर कौशेय वस्त्र धारण कर छम से नहीं उतरती। उसके इस परम दिव्य लावण्य का वहां कोई ग्राहक नहीं, काव्य में ही उसको समादर प्रदान कर राजगद्दी दी जाती है। इतिहास और यथार्थ में जितना नैकट्य है उतना ही काव्य और कल्पना में। काव्य में यथार्थ पूर्णत: अस्वीकृत नहीं। इसी का आधार लेकर पुन: कल्पना के मणिखचित भवन बनाए जाते हैं। यथार्थ को विकृत करने का कवि को कोई अधिकार नहीं। यथार्थ यथार्थ है, अपरिवर्तनीय है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक तथ्यों का उल्लंघन, उसकी स्वच्छन्द परिणति कवि के लिए, उसके कल्पना-विकास के लिए, अशोभनीय है, तथा वर्जित है। कवि की विधायक शक्ति कल्पना, सत्य का—यथार्थ का किन्हीं अंशों में विरोध नहीं करती, लेकिन काव्य में कल्पना का

अनर्गल आलाप भी नहीं होता, वह मर्यादित होती है—लक्ष्मण-रेखा से घिरी रहती है। ऐतिहासिक तथ्यों के परिवर्तन और नवीन तथ्यों की कल्पनाओं के सबसे अधिक सफल और सुन्दर होने की सम्भावना अस्पष्ट तथ्यों के धुंधले क्षितिज पर होती है। जहां कहीं धुंधले, तिमिरावृत तथ्य के भवन मिलते हैं, वहीं कल्पना की टार्च से उनके स्पष्ट दर्शन किए जाते हैं। इतिहास अतीत का जीवन-वृत है और इसके प्रति मनुष्य में अनुराग रहता है. काव्य में कल्पना-जन्य कथा अथवा पात्र पर हमारी इतनी श्रद्धा नहीं होती, उसके साथ इतनी अधिक आत्मीयता की भावना जाग्रत नहीं होती जितनी किसी ऐतिहासिक कथा अथवा पात्र पर सहजत: होती है। उन कथाओं एवं पात्रों मे यथार्थ की विपुल सम्पदा होने के कारण उत्प्रेरक शक्ति अक्षुण्ण रहती है। सुन्दर और भावपूर्ण होते हुए भी काल्पनिक वृत्त ऐतिहासिक वृत्तों के समान प्रभावशाली नहीं बन सके हैं[1]। हो सकता है किसी सीमा तक कवि-कल्पना की बहुलता ही इसका कारण हो। इतिहास मानव के ह्रास एवं विकास का, राष्ट्र अथवा जाति के उत्कर्षापकर्ष का, उत्थान-पतन का निरपेक्ष भाव से तथ्यात्मक अनुशीलन करना अपना कर्त्तव्य समझता है। उस तथ्यात्मक विवरण में इतिहासकार का व्यक्तित्व सर्वथा असम्पृक्त रहता है, वहां वह एकदम तटस्थ रहता है। कवि के लिए यह निरपेक्षता अथवा तटस्थता आवश्यक नहीं है[2]। काव्य और इतिहास दोनों ही सत्यान्वेषी होते हैं। सत्य के अन्वेषण में वे अपने विषयगत वर्णन को अप्रतिम और निरवरोध गति से अग्रसर करने के लिए कल्पना पर अवलम्बित रहते हैं। कल्पना और यथार्थ (तथ्य) ये दो तत्व ऐसे हैं जो कवि और इतिहासकार को

---

1. डॉ० रामानंद तिवारी : सत्यं शिवं सुन्दरम् (भाग १) पृ० ४०७

1. The Epos ought to be positive in sense that it is this objective presentment of a world based on its own foundations and realised in virtues of its own necessary laws a world moreover with which the personal outlook of the poet must remain in connection that enables him to identify wholly with it.—Hegel—Philosophy of Fine Art Vol. IV, P. 1.5

समान भूमि पर अवतरित करते हैं[1]। वैसे जहां तक सम्भव होता है इतिहासकार कल्पना के आश्रय में कम ही जाता है।

यहां यह द्रष्टव्य है कि इतिहास यथार्थोन्मुखी होता है और काव्य आदर्शोन्मुखी। इतिहास तथ्यों का निरपेक्ष स्पष्टीकरण है, इतिहास लेखक की अभिरुचि तटस्थ रहती है। वह अपनी रुचियों के अनुकूल किसी तथ्य को न्यूनाधिक नहीं कर सकता। वह तो एक फोटोग्राफर की भांति चित्र प्रस्तुत करता है। कवि फोटोग्राफर के साथ आर्टिस्ट भी होता है। समाज में जहां उसकी रुचि के प्रतिकूल मानव के अहितार्थ कोई वस्तु प्रतीत होती है तो वह या तो उसका उन्मूलन ही कर देता है या फिर इच्छानुकूल उस पर स्वतंत्र विचार की कलम लगा देता है। एक 'ऐसा है' को लक्ष्य मानकर चलता है, दूसरा 'ऐसा होना चाहिए' को ग्राह्य मानता है।

काव्य में ऐतिहासिक तत्व—

काव्य में इतिहास से प्रचुर सामग्री ग्रहण की जाती है। महाकाव्य की कथावस्तु के लिए तो ऐतिहासिक कथानक अनिवार्य समझा गया है और इसी के साथ नायक को भी इतिहासविश्रुत—ऐतिहासिक महापुरुष, नृपादि आवश्यक माना गया है। इस प्रकार किसी ऐतिहासिक वृत्त पर लिखे गये प्रबन्धकाव्य को ऐतिहासिक प्रबन्धकाव्य का अभिधान दिया जा सकता है। ऐतिहासिक प्रबन्धकाव्य में इतिहास की उंगली पकड़कर चलना कलाकार अपना कर्त्तव्य समझता है। जहां कहीं, किसी घटना, परिस्थिति विशेष में इतिहास गूंगा होता है, वहां कवि ऐसी घटना को मुखरित करने

1. विविध घटनाओं को पूर्वापर सम्बन्ध स्थापित करते हुए उन्हें एक सूत्र में परिकल्पित तथा धारावाहिक बनाने की प्रतिक्रिया इतिहासकार के लिए आवश्यक है। यह विज्ञान के क्षेत्र की वस्तु न होकर साहित्य के क्षेत्र की वस्तु है। यह प्रक्रिया कल्पना द्वारा संचालित होकर ही क्रियाशील होती है और इतिहास को साहित्य की सीमा तक खींच लाती है।

—सम्मेलन पत्रिका (वर्ष ४९, संख्या ३–४) पृ० १९३

के लिए कल्पना की तीव्र जिह्वा से काम लेता है। लेकिन यह कल्पना को सर्वथा स्वच्छन्द गति नहीं प्रदान कर सकता। अस्तु किसी भी परिस्थिति में वह इतिहास का गला नहीं घोंट सकता, उसका दिशानिर्देशन नहीं कर सकता। अपने ऐतिहासिक प्रबन्ध-काव्य का विशाल भवन निर्मित करने के लिए कवि ऐतिहासिक वृत या आख्यान और महापुरुष--राजादि को आधार बनाता है। उस के लिए वह तत्कालीन शिलालेखों, ताम्रपत्रों, वास्तुकला, मूर्तिकला, आदि और तद्विषयक प्रकाशित सामग्री के साथ लोकविश्रुत कथाओं किंवदन्तियों आदि से सहायता प्राप्त करता है। दन्तकथाओं के शैवाल में आवेष्टित प्रसंगों घटनाओं आदि का भी वह श्रृङ्खलाबद्ध अन्वेषण करता है। इतिहासकार को सामयिक परिस्थितियों से असपृक्त, बहुत दूर रहना पड़ता है। परन्तु कवि सामयिक युगबोध से परिचित और प्रभावित रहता है। वह अपनी कृति में युगबोध को, युगभावनाओं एवं आदर्शों को वाणी देता है। युग की समस्याओं को व्यक्त कर उनके उचित हितप्रद समाधान की तलाश करता है। ऐतिहासिक प्रबन्ध में वह प्राचीन घटनाओं एवं समस्याओं को समसामयिक समस्याओं में केन्द्रीभूत करने के लिए सचेष्ट रहता है। अनेक स्थानों पर वह नवीन ढंग से विचार व्यक्त करता है। परन्तु अमर्यादित और अनर्गल कल्पना असंगति तथा विकृति भी उत्पन्न करती है। 'आर्यावर्त' में पृथ्वीराज के निधनोपरान्त मुहम्मदगौरी संयोगिता पर आक्रमण करता है, यह न्यायोचित कल्पना नहीं है; ऐतिहासिक तथ्य तथा सम्भावना से दूर निन्दनीय उत्पत्ति है। ऐसी असत्यावलम्बित कल्पना राष्ट्रीय एव सांस्कृतिक भावना को उदबुद्ध करने में फलीभूत नहीं होती। अतः कवि को उन्हीं स्थलों के परिवर्तन का अधिकार होना चाहिए जो विश्वस्त हैं और जिनके प्रादुर्भाव से हमारी राष्ट्रीय भावना को कोई आघात नहीं पहुंचता। जिन तत्वों, भावनाओं, विचारधाराओं तक इतिहासकार की बुद्धि अनुगमन नहीं कर सकती वहां महाकवि की प्रतिभा सहज ही पहुंच जाती है। इतिहासकार प्रतिभाशून्य प्राणी होता है, लेकिन कवि प्रतिभासम्पन्न कलाकार होता है। कवि अपनी अप्रतिम प्रतिभा के द्वारा अतीत का वह चलचित्र हमारे

सामने प्रस्तुत करता है जिसमें तत्कालीन धार्मिक भावनाओं, रीति-रिवाजों, सांस्कृतिक विचारधाराओं तथा आध्यात्मिक-नैतिक भावनाओं का दिग्दर्शन होता है। मनुष्य की अनुकृतियों की गहन उपत्यकाओं को महाकवि ही आलोकित करता है। ऐतिहासिक वृत्त काव्य का केवल आधार है। वृत्त के तथ्य-तन्तु देह के अस्थिपंजर के समान हैं। उन्हीं पर काव्य का देह खड़ा होता है। किन्तु काव्य के देह-सौष्ठव का निर्माण (संवेदनाओं के स्नायुमण्डल में) जीवन की रक्तिम विद्युत धारा तथा चेतना के प्रवाह से होता है। भावों के रक्त की लाली और आत्मा के ओज की स्फूर्ति अपूर्व लावण्य की सृष्टि कर काव्य के स्वरूप सौंदर्य को यौवन की सुषमा की भांति खिलाती है[1]। जीवन की स्थूल घटनाओं के रक्तमांस से गठन-सौष्ठव और भावों की संवेदनाओं से जीवन का रक्तसंचार प्राप्त कर तथा आत्मभाव के ओज से दीप्ति प्राप्त करके ऐतिहासिक वृत्त का अस्थिपंजर काव्य का सजीव और सुन्दर आकार ग्रहण करता है[2]। इसीलिए ऐतिहासिक काव्यों में ऐतिहासिक पात्रों का जीवन चित्रित किया जाता है, उनके आदर्श प्रतिष्ठित किये जाते हैं।

इतिहास रस –

किसी भी रचना में काव्य-शिल्प और भाव-सौंदर्य दोनों की स्थिति स्पृहणीय मानी जाती है, काव्य में काव्यात्मकता, उपन्यास में औपन्यासिकता, नाटक में नाटकीयता, पौराणिक और ऐतिहासिक रचना में पौराणिकता और ऐतिहासिकता की परिव्याप्ति होना आवश्यक है। ऐतिहासिक रचना में जीवन्त, सजीव, प्राणवान ऐतिहासिकता ही 'इतिहास-रस' माना जाता है। इतिहास-रस की निष्पत्ति ऐतिहासिकता के सम्यक् निर्वाह द्वारा ही संभव है, और ऐतिहासिक काव्यकार का परमोद्देश्य भी यही है कि वह ऐतिहासिकता का अनुभव कराए। जिस तरह ऐतिहासिक उपन्यासकार का महत्वपूर्ण कार्य इतिहास-रस की सृष्टि करना है उसी प्रकार रचना में तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों, आचार-व्यवहार और

---

1. डॉ० रामानन्द तिवारी—सत्यं-शिवं-सुन्दरम् (भाग १) पृ० ४१३
2. वही—पृ० ४२५

वस्त्राभूषण आदि सभी पर विहग दृष्टि डालने से ऐतिहासिकता की अवतारणा की जाती है। छोटी से छोटी बातों में भी सावधान रहना पड़ता है। सामान्य सम्बोधन, शिष्टाचार के लिए प्रयुक्त शब्द और तत्कालीन अन्धविश्वासों के विरुद्ध आने वाले वाक्यांश भी 'रस-बोध' में बाधक हो जाते हैं।

इतिहास - रस की निष्पत्ति के तीन आधार हैं—

(१) ऐतिहासिक वस्तु और पात्र।
(२) ऐतिहासिक वातावरण।
(३) ऐतिहासिक देश - काल।

ऐतिहासिक कृति में वस्तु एवं पात्र का इतिहासविख्यात होना परमावश्यक है। इनके अतिरिक्त कवि अन्य आनुषंगिक घटनाओं तथा पात्रों को निजी कल्पना द्वारा जन्म देता है। परन्तु कल्पना का प्रयोग इतिहास के बलिदान पर नहीं किया जा सकता। इतिहास के साथ कल्पना कोई खिलवाड़ नहीं कर सकती, वरन् इन पात्रों, घटनाओं का इतिहासीकरण किया जाता है जिससे वे अस्वाभाविक एवं कृत्रिमता का भद्दापन पैदा न कर सकें। वैसे ऐतिहासिक रचनाओं के लिए पात्रों का ऐतिहासिक होना आवश्यक माना जाता है, कल्पित स्वरूप अमान्य है[1]। ऐतिहासिक कृतियों में हम अतीत के चित्र का अवलोकन कर रस प्राप्त करते हैं। यही रस रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'इतिहास-रस' माना है[2]। इतिहास वस्तु और पात्र का शुष्क विवरण प्रस्तुत कर सकता है, यह रसविहीन एक शास्त्र मात्र है। वस्तु या पात्र न तो साहित्य के सत्य को और न ही इतिहास के सत्य को आघात पहुँचाते हैं।

लेकिन वस्तु या पात्र से अधिक ऐतिहासिक वातावरण रचना को ऐतिहासिकता प्रदान करते हुए 'इतिहास रस' को तीव्रता और उत्तेजना प्रदान करता है। कभी - कभी वस्तु या पात्र के इतिहास शून्य होने पर भी ऐतिहासिक वातावरण के द्वारा तदयुगीन धार्मिक,

1. पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी—साहित्य परिचय, पृ० ९२
2. डॉ० रामरतन भटनागर—प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक, पृ० ३५

सामाजिक चित्रण प्रस्तुत कर ऐतिहासिकता का वर्धन कर रस-निष्पत्ति की जाती है। जिस युग का कथानक ग्रहण किया जाता है उस युग के रीति-रिवाज, रहन-सहन, वेश-भूषा, आचार-विचार, धार्मिक - सांस्कृतिक - राजनीतिक परिस्थितियों की अभिव्यक्ति ही ऐतिहासिक वातावरण कही जाती है। अपने बाह्यरूप में इतिहास की स्थूल वस्तुओं, पदार्थों यथा दुर्ग, प्रासाद, सभा, अस्त्रशस्त्र, वेश-भूषा आदि का प्रदर्शन ऐतिहासिक वातावरण के अन्तर्गत किया जाता है और ऐतिहासिक वातावरण अपने आन्तरिक रूप में समाज के आचार - विचार, रीति-रिवाज आदि का इतिहास-सम्पन्न चित्रण सुलभ बनाता है। इतिहास की अपेक्षा वातावरण ही अधिक महत्वपूर्ण है। इतिहास की खूंटी पर काव्य या नाटक को लटकाया जाता है और ऐतिहासिक वातावरण वह दीवाल है जहाँ यह खूंटी गाड़ी जाती है[1]। अतीत के युग में—दे। में पहुँचने के लिए हम वातावरण के वायुयान में बैठते हैं। वातावरण ऐतिहासिक रंग (Historical Colour) को गाढ़ा और चमकदार बनाता है। ऐतिहासिक रंग ही हृदय और मस्तिष्क को अभिभूत कर लेता है—सफल अनुभूतियां इतिहासमय हो जाती हैं और यही ऐतिहासिक अनुभूतियां इतिहास-रस हैं। ऐतिहासिक वातावरण ही काव्य में इतिहास की सच्ची झांकियां प्रदर्शित करता है और ऐतिहासिक झाँकियों से ही ऐतिहासिक कृति ऐतिहासिक अनुभूति या रस की उत्पत्ति करने में सफल होती है।

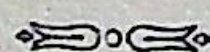
ऐतिहासिक वातावरण बिना देशकाल के अपूर्ण है। घटनाओं प्रसंगों, वस्तु तथा पात्रों की पूर्ण ऐतिहासिकता देशकाल की अनुकूलता द्वारा ही सिद्ध हो सकती है ऐतिहासिक स्थान - विशेष, कालविशेष के सम्यक् ज्ञान से ही ऐतिहासिक वातावरण को अधिक बल मिलता है। पात्रों की वेशभूषा, रीति-रिवाज, रहन-सहन आदि यदि तद्युगीन होंगे तभी देशकाल की सफलता मानी जा सकेगी। बिना देशकाल के पूर्ण ज्ञान के ऐतिहासिक रचना में रस-भंग हो सकता है। ऐतिहासिक रंग को प्रखरता प्रदान करने के

---

1 डॉ० जगदीशचन्द्र जोशी—प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक, पृ० ३३

लिए देशकाल का ज्ञान अनिवार्य है। वस्तुतः फल, घटना के चित्रण के साथ देशकाल का सजीव युगसम्मत चित्रण ही ऐतिहासिकता को यथार्थता प्रदान करते हुए इतिहास-रस की अवतारणा में अधिक सहायक होता है। निष्कर्षतः किसी भी ऐतिहासिक कृति में तीनों की नैसर्गिक योजना इतिहास-रस को संपुष्ट करती है।

ऐतिहासिक अनुभूति या इतिहास-रस का उदय ऐतिहासिक काव्य को उत्कृष्टता प्रदान करता है। ऐतिहासिक काव्य में काव्य की पावस-झड़ी के साथ ऐतिहासिकता की वीरवधूटियां वृत्त की हरि दूब पर चलती-फिरती बड़ी मनोरम लगती हैं। वैसे काव्य के साथ इतिहास की सुरक्षा बनाये रखना सहज कार्य नहीं, यह अति कौशल और परिज्ञान की अपेक्षा रखता है। अतः ऐतिहासिक काव्य की रचना अतिदुस्साध्य है। अन्य भाषाओं की भांति हिन्दी में भी समुन्नत ऐतिहासिक काव्यों का अभाव खटकता है।



हिन्दी के सन्त कवियों की राष्ट्र को देन

—डॉ० विद्यानाथ गुप्त



भारतवर्ष में अनन्तकाल से राष्ट्रीय एकता की भावना किसी न किसी रूप में अबाध गति से प्रवाहित होती रही है। इस विशालकाय देश में सदा एक समन्वित भारतीय संस्कृति का विकास होता रहा है। प्राचीन काल से इस देश में समय समय पर अनेक जातियों एवं संस्कृतियों का आगमन होता रहा परन्तु एक समय पाकर वे सभी नीर-क्षीर के समान भारतीय संस्कृति में समा कर एक हो गईं। रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दों में—

> हे थाय आर्य, हे था अनार्य, हे थाय द्राविड़ चीन,
> शक-हूण-दल-पठान मोगल, एक देहो लीन।

भारतवर्ष में मुसलमानों के आगमन पर कुछ समय तक हिन्दुओं एवं मुसलमानों में संघर्ष अवश्य होता रहा परन्तु दोनों जातियों ने अपने भविष्य को उज्ज्वल एवं शान्तिमय बनाने के लिए परस्पर मिलन में ही कल्याण समझा। परिणामतः इतिहास, धर्म, रीति-रिवाज, कला, संगीत, साहित्य आदि सभी क्षेत्रों में दोनों जातियों की एक सामान्य संस्कृति पनपने लगी जिसे "भारतीय

मुस्लिम संस्कृति" कहा जा सकता है। दोनों जातियों के नित-प्रति जीवन के अनेक कार्य-व्यवहारों तथा आचार-विचारों में एक-रूपता आती गई और वे एक भारतीय जाति के रूप में अपना जीवन व्यतीत करने लगे। इस एकीकरण का बहुत कुछ श्रेय तत्कालीन सन्तों तथा उनकी वाणी को भी दिया जा सकता है जिन के प्रभाव से जनता का साम्प्रदायिक विष धीरे धीरे उतरता गया और उनमें बन्धुत्व की भावना जाग्रत होती गई।

साधारणतय: सन्त शब्द का प्रयोग किसी भी पवित्रात्मा, सदाचारी अथवा साधु और महात्मा के लिए किया जा सकता है। परन्तु हिन्दी के सन्त कवियों ने अपने सत्य के प्रकाश से केवल भारतवासियों की ही नहीं अपितु मानव मात्र की मंगल कामना की। उनकी दृष्टि में सन्त एव पीर तो वही है जो दूसरों की पीर मिटाने वाला हो –

कबिरा सोई पीर है, जो जाने पर पीर।
जो पर पीर न जानई, सो काफ़िर बेपीर ।।

तुलसीदास ने भी सच्चे सन्त के विषय में लिखा है—'पर दुःख द्रवै सुसन्त पुनीता'। सन्त कवि इस कथन को चरितार्थ करने में सफल हुए हैं।

सन्त कवि चतुर्दिक फैली हुई अशान्ति से दुखी थे। वे समस्त भारतवासियों के हित के लिए चिन्तित थे। उन्होंने व्यर्थ के आडम्बरों में पड़े हुए हिन्दुओं एवं मुसलमानों को धर्म की सच्ची राह पर चलने का उपदेश दिया। उन के द्वारा बताई गई पद्धति पर हिन्दु-मुस्लिम दोनों संस्कृतियों का प्रभाव होने के कारण उन का साहित्य लोक का साहित्य बन गया।

वास्तव में भक्ति का आन्दोलन पहले दक्षिण में ही प्रारम्भ हुआ। बारहवीं शताब्दी में रामानुज जी ने वैष्णव भक्ति का प्रचार कर समाज की विषमताओं के शमन का प्रयास किया। इस के पश्चात् भक्ति की एक लहर समस्त देश में उठने लगी। बंगाल में चैतन्य महाप्रभु, महाराष्ट्र में नामदेव, पंडरपुर के सन्तों

में एकनाथ, तुकाराम आदि अनेक सन्त अपनी अमृतमयी वाणी द्वारा जात-पात की अवहेलना कर जनता में भक्ति का संदेश पहुँचाते रहे।

चौदहवीं शताब्दी में उत्तर भारत में रामानन्द जी ने जात-पात तथा ऊंच-नीच की क्षुद्र भावनाओं से ऊपर उठ कर सभी में बन्धुत्व की भावना का प्रचार किया। उन्होंने अपने विचारों को जनता तक पहुंचाने के लिए हिन्दी भाषा का प्रयोग किया। वे कहा करते थे—

जात-पात पूछे नहीं कोई,
हरि को भजे सो हरि का होई।

इन्हीं रामानन्द जी के शिष्य थे सन्तवर कबीर। कबीर उन सन्तों में से थे जिन्होंने तत्कालीन राजनैतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित हो कर राष्ट्र में फैली हुई अराजकता को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया। वे अनुभव करते थे कि हिन्दु और मुसलमानों के वैमनस्य शान्त होने में ही राष्ट्र का कल्याण है। इसी लिए वे दोनों जातियों की एकता पर बल देते रहे—

गहना एक कनक ते गहना, ता में भाव न दूजा।
कहन सुनन को दुई कर पाते, इक नेवाज़ इक पूजा।।
वही महादेव, वही मुहम्मद, ब्रह्मा आदिम कहिए।
कोई हिन्दु कोइ तुरक कहावै, एक जमीं पर रहिए।।

इस प्रकार इन्होंने धर्मोपदेश के माध्यम से दोनों जातियों में एकता उत्पन्न करके मध्यकालीन युग में सर्वप्रथम नेता का स्थान प्राप्त किया। हिन्दी के विद्वान डॉ० इन्द्रनाथ मदान ने कबीर की तुलना गान्धी से करते हुए लिखा है—यदि उन्हें उन के समय का गांधी कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी.........गांधी जिस प्रकार चालीस कोटि भारतीय जनता का हृदय सम्राट है, उसी प्रकार कबीर भी अपने समय की दलित और पीड़ित जनता का नायक था। गांधी जिस प्रकार हिन्दु-मुस्लिम एकता का प्रबल समर्थक है

उसी प्रकार कबीर भी उन दोनों को एक बनाने के लिए व्यग्र था ... गांधी मानो कबीर का आधुनिक संस्करण है।"

सन्त परम्परा में गुरु नानकदेव जी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्हें जात-पात तथा ऊंच-नीच के भेद-भाव से घृणा थी। राष्ट्र के हित के लिए वे सभी देश वासियों के परस्पर विद्वेष को समाप्त करना आवश्यक समझते थे। उन्होंने अपनी वेष - भूषा, रहन - सहन एवं खान - पान में दोनों जातियों का सम्मिश्रण कर रखा था। टोपी पहनते थे मुसलमानों वाली एवं तिलक लगाते थे हिन्दुओं वाला। एक ओर उनके साथ रहता था बाला और दूसरी ओर रहता था मरदाना। समन्वय उनका लक्ष्य था। उनके लंगर में हिन्दु-मुसलमान सभी बिना किसी भेद-भाव के भोजन करते थे। जाति-कुजाति की हीन भावनाओं का निषेध करते हुए उन्होंने जनता को सत्य की ओर प्रेरित किया—

जाति दे किआ हित्य, सत्य परखिए।

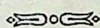
वे जब तक जीवित रहे देश की भलाई के लिए दोनों जातियों के वैमनस्य को मिटाते रहे। एकता का उनका सदेश आज भी भारतीय संस्कृति का गौरव है।

धर्म तथा जाति के भेद-भाव का खण्डन कर सांस्कृतिक आधार पर सब में एकसूत्रता उत्पन्न करने वालों में दादू दयाल जी का नाम उल्लेखनीय है। वे स्थान-स्थान पर जा कर प्रभु महिमा एवं भगवद्-भक्ति के प्रचार द्वारा जनता में फैली हुई निम्न भावनाओं का खण्डन करते रहे। हिन्दुओं एवं मुसलमानों को एक ही राष्ट्र रूपी शरीर का अंग मानते हुए उन्होंने कहा—

दादू दोनों भाई हाथ पग,
दोनों भाई कान।
दोनों भाई नैन हैं,
हिन्दु मुसलमान ॥

सन्त परम्परा में इन के अतिरिक रैदास, रज्जब, पलटू,

गरीबदास, दरिया साहब, भीखा आदि अनेक सन्तों का नाम लिया जा सकता है जिन्होंने समता, दया, नम्रता, क्षमा, सन्तोष आदि अनेक मानवीय गुणों को अपनाने तथा वैर-विरोध, ऊंच-नीच की नीच प्रवृत्तियों का बहिष्कार करने का अनुपम और मूल्यवान उपदेश दिया। उन्होंने तत्कालीन हिन्दु तथा मुसलमान दोनों जातियों की असंख्य कुरीतियों का खण्डन कर उन में एकसूत्रता स्थापित की। निस्सन्देह सन्तों की वाणी सांस्कृतिक समन्वय की वाणी थी जिस ने देश में सांस्कृतिक राष्ट्रीयता की सृष्टि कर राष्ट्र के कल्याण में अत्यधिक योग-दान दिया।



कश्मीरी भाषा का संस्कृत से तुलनात्मक अध्ययन—

--बदरीनाथ शास्त्री

भारतीय संस्कृति को विकसित करने का जितना श्रेय कश्मीर को प्राप्त हुआ है, उतना अन्य किसी देश को नहीं हुआ। यह देश शताब्दियों से सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्र रहा है। संस्कृत का प्रधान केन्द्र होने के कारण यह 'शारदा पीठ' (Seat of Learning) के नाम से, प्राचीन समय में, प्रसिद्ध था। यहां के विविध शास्त्रों में निष्णात आचार्यों, विद्वानों, लेखकों, कवियों, दार्शनिकों, इतिहासकारों आदि मनीषियों ने संस्कृत साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में समय समय पर योगदान देकर इस साहित्य को समृद्ध बनाया है।

कश्मीर मण्डल आठवीं शताब्दी ईस्वी से बारहवीं शताब्दी ईस्वी तक अर्थात् चार सौ वर्ष पर्यन्त सारे भारतवर्ष के लिए साहित्य और संस्कृति का मुख्य केन्द्र था। कश्मीर के इसी स्वर्ण युग में आचार्य उत्पलदेव तथा आचार्य अभिनव गुप्त जैसे दार्शनिक कल्हण तथा बिल्हण जैसे इतिहासकार, नरहरि तथा मंख जैसे कवि उत्पन्न हुए हैं। वस्तुतः भारतीय साहित्य के विकास में कश्मीर का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

कश्मीर में तेरहवीं शताब्दी से पूर्व संस्कृत, प्राकृत और कश्मीरी के अतिरिक्त कोई भाषा उपलब्ध न थी। इससे स्पष्ट होता है कि तेरहवीं शताब्दी से पूर्व इस देश में लाग आपस में संस्कृत, प्राकृत तथा कश्मीरी भाषा के द्वारा ही अपने भाव प्रकट करते थे। कश्मीर के प्रसिद्ध कवि बिल्हण (११वीं शताब्दी) ने अपने महाकाव्य 'विक्रमाङ्कदेव चरितम्' के अट्ठारहवें सर्ग के छटे श्लोक में इसका स्पष्टीकरण देते हुए कहा है—

"हम सारस्वत कुल की जन्मभूमि कश्मीर के कौतुकों के भण्डार के विषय में क्या कुछ कहें, जिस (कश्मीर) भूमि के अनेक अद्भुत गुणों की कथाओं के अमृत से कान परिपूर्ण हैं और जिसमें स्त्रियों की वाणी भी जन्मभाषा (कश्मीरी) की भान्ति ही संस्कृत तथा प्राकृत के रूप में प्रत्येक घर में विलास करती है ॥"

तेरहवीं शताब्दी में मुसलमानों का शासनकाल आरम्भ हुआ। उनके शासन में सर्वप्रथम रेंचनशाह (सदरउद्दीन) शहाबुद्दीन, कुतुबुद्दीन, सिकन्दर और जैन-उल्लाब्दीन आदि सम्राट हुए। इनमें शहाबुद्दीन तथा सिकन्दर बुतशिकन के शासन तक संस्कृत में भी राज्य-कार्य होता था। परवर्ती शासकों के भी कुछ शिलालेख संस्कृत में अब तक पाये जाते हैं। इतना ही नहीं, मुसलमान भी कुतबों के रूप में संस्कृत को ही प्राथमिकता दिया करते थे। यही कारण है कि आज तक कश्मीर में कहीं कहीं संस्कृत में कब्रों के कुतबे पाये जाते हैं।

जैन-उल्लाब्दीन के समय (१४२३–१४७५) संस्कृत और फारसी साथ साथ चलती रही। यह कुछ समय तक मिश्रितभाषा भी रही। कश्मीर के एक लेखक क्षेमेन्द्र (यह अन्य क्षेमेन्द्र हैं मुख्य क्षेमेन्द्र के परवर्ती) रचित 'लोक प्रकाश' से उदधृत निम्नाङ्कित उदाहरण से स्पष्ट होता है कि किस प्रकार यह मिश्रितभाषा राज्य-कार्यों तथा न्यायालयों में भी प्रचलित थी—

"संवत्सरेऽत्रदिने श्री प्रेनापितकदले रैज्जि - अमुकेन रैज्जि अमुक पुत्रेण हस्ते सति बंगलचीरिका दत्ता। यथा अत्र आगरान्तरे

खुज्या ग्रमुकः खुज्या ग्रमुकं प्रति लिखतिखुज्या ग्रमुके सलामा बन्दगी ददनीयमिति"। हज़रत मखदूम साहिब (१४०० ई०) का वसीयतनामा भी दोनों लिपियों तथा भाषाग्रों में (संस्कृत तथा फारसी में) लिपिबद्ध हमें प्राप्त हुग्रा है। (यह वसीयतनामा जम्मू व कश्मीर संग्रहालय में इस समय भी सुरक्षित है)।

तेरहवीं शताब्दी तक कश्मीर का सारा साहित्य संस्कृत ग्रथवा प्राकृत में ही लिखा जाता रहा है। इसी शताब्दी के उत्तरार्ध की पहली पुस्तक शितिकण्ठ रचित 'महानय प्रकाश' है। इसमें चौदह उदय (भाग) हैं। ग्राद्य से ग्रन्त तक इस दार्शनिक पुस्तक में देश-भाषा (कश्मीरी) के सुन्दर उदाहरण पाये जाते हैं। पुरानी कश्मीरी के निम्न पद्य का उदाहरण द्रष्टव्य है—

तुर्य सुषुप्त स्वानु जागर्यु,
जान सिद्ध वज्जेत नीरूपु।
चौरय विच्यु जजी सागर्यु
व्यापोह शवन्युकमरूपु॥

शितिकण्ठ की रचना के बाद चौदहवीं शताब्दी में कश्मीर की प्रसिद्ध प्रथम कवयित्री लल्लेश्वरी के लल्लवाक्यों का संग्रह भी पाया जाता है जिसमें शुद्ध कश्मीरी भाषा का प्रयोग किया गया है—

ग्वर शब्दस युस यछ पछ बरे,
ग्यान वगि रटि च्यत त्वर्गस।
यन्द्रयै शोमरिथ ग्रानन्द करे
ग्रदे कुस मरि तय मारन कस॥

यह वही समय था जबकि यवनधर्म के ग्रनुयायी तथा प्रचारक जुलकदरखां, मीर सैयद ग्रली ग्रादि पश्चिमी सीमा से कश्मीर में ग्रा गये। उनमें से बहुतों ने कश्मीर को ग्रपना निवासस्थान बनाया। उनके ग्रागमन से मुस्लिम संस्कृति का प्रचार व प्रसार यहां हुग्रा। परिणामस्वरूप बहुत से ग्ररबी तथा फारसी शब्द कश्मीरी भाषा में ग्रा गए।

लल्लेश्वरी के समय में ही कश्मीर में स्थित प्रसिद्ध गांव 'चार'

के निवासी नुन्द ऋषि के, जो शेख नूरउद्दीन के नाम से भी प्रसिद्ध हैं, कश्मीरी भाषा में श्लोक पाये जाते हैं जिनमें शुद्ध कश्मीरी शब्दों का प्रयोग किया गया है। नुन्दऋषि के निम्नश्लोक का उदाहरण देखिए—

हूनिस वासुर प्यठ सूर लारे,
क्रिस गज्य अन्दरय स्वख।
ऋषा वनन खुदा गारे,
रेंचि छुय दुखय स्व ख।।

इसी शताब्दी में कश्मीर के प्रसिद्ध लेखक 'लार' नामक गांव के निवासी अवतार भट्ट का 'बाणासुर कथा' नामक काव्य शारदा लिपि में लिखा हुआ मिलता है। इस काव्य का कथानक 'हरिवंश पुराण' पर आधारित है। इसमें संस्कृत तथा शुद्ध कश्मीरी शब्दों का प्रयोग अधिक रूप से हुआ है तथा विदेशी शब्दों का प्रायः अभाव दिखाई देता है। इसके पद्य श्लेषमय होने के कारण बहुत ही आह्लादकर हैं। उपमा, रूपक, यमक, पुनरुक्तवादभास आदि अलङ्कारों का प्रयोग समुचित रीति से कवि ने किया है। कश्मीरी साहित्य में यह पहला खण्ड-काव्य है। इस काव्य के निम्न उदाहरणों का अवलोकन कीजिए—

ए शुनेत् विनये तदाशये
सर्वरस्ते दुज्जने चडे।
पुष्पवर्षुन सुरु नभाशये
क्षे वीरविन्द तत् आहवि चडे।।

गयि असि किस तय गोविन्दा
सकले काञ्चन वेन्न देह।
नेरु निकुट क्षे ए बु विन्दा
वननु क्या गौ हर सन्देह।। (बाणासुर कथा)

[बाणासुर कथा की पाण्डुलिपि इस समय 'पूना भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट' में सुरक्षित है]

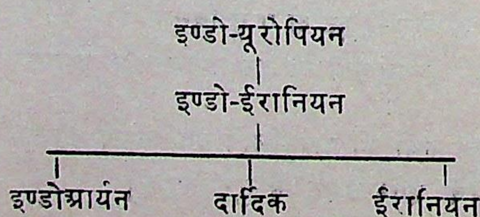
फिर बहुत से कश्मीरी कविता के लेखक, जैसे रुवद्यद, परमानन्द, अरिनिमाल, कृष्णदास, ख्वाजा हबीब, अज़ीज़ दरवेश, वहाबरकर आदि कश्मीर में पैदा हुए। मुस्लिम शासन के कारण यहां के लेखकों तथा कवियों ने अपनी विभिन्न रचनाओं में शुद्ध कश्मीरी के अतिरिक्त फारसी तथा अरबी शब्दों का प्रयोग भी स्वच्छन्द रूप से किया है। यह प्रवृत्ति प्राय: मुस्लिम साहित्यक रों में पाई जाती है।

फारसी, अरबी तथा संस्कृत को छोड़ कर जो कश्मीरी शब्द अवशिष्ट रहते हैं, उन अवशिष्ट शब्दों के विषय में प्राच्यभाषा, ग्रियर्सनादि, विद्वानों का मत इस प्रकार है कि कश्मीरी भाषा दार्दिक है तथा कश्मीरी शब्दों का विकास दर्ददेश में हुआ है। उसका सम्बन्ध दार्दिक भाषा से बताया जाता है। (बलतिस्तान तथा तञ्जीर नदी का मध्यभाग दर्ददेश कहा जाता है। वहां की भाषा से पैदा हुए शब्द दार्दिक माने जाते हैं।)

(Elements of the Sciences of Language, by Tarapori walla P. N. 362)

यहाँ पर कश्मीरी भाषा के विषय में भाषाशास्त्रियों के मत का उल्लेख करना आवश्यक है।

कश्मीरी भाषा का स्रोत :—विश्व के भाषा परिवारों में भारोपीय परिवार (Indo - Europoen Family) सब से अधिक विस्तृत एव समृद्ध है। संसार की समुन्नत, सुसंस्कृत एवं शक्तिशाली जातियों की अधिकतर भाषाएं इसी परिवार से सम्बद्ध हैं। इस परिवार में अनेक उप-परिवार हैं। उनमें से एक परिवार इण्डोईरानियन (भारती-ईरानी) परीवार है। उसके तीन उप-परिवार माने जाते हैं। भाषा शास्त्रियों ने उनका वर्गीकरण इस प्रकार किया है—



हिन्दुकुश (अफगानिस्तान के उत्तर में) से लेकर कश्मीर तक फैले हुए प्रदेश में शीना, वशगाली आदि भाषाएं बोली जाती हैं। उनमें ईरानी तथा भारतीय दोनों के लक्षण मिलते हैं। वे भी भारत ईरानी वर्ग में सम्मिलित की जा सकती हैं। सर जार्ज ग्रियर्सन ने इस वर्ग का नाम पैशाची भाषा वर्ग रखा है।

कहा जाता है कि मध्य-एशिया से आने वाले आर्यों का एक वर्ग परिस्थिति वश भारत के मैदानी इलाकों में न पहुँच कर पहाड़ी प्रदेशों में बस गया होगा। यह इलाका दरद और इसकी भाषा दरदीय या पैशाची कहलायी। इसी दरदी या पैशाची से कश्मीरी भाषा का सम्बन्ध माना जाता है।

कुछ लोगों के मत से दार्दिककुल में शीना, कश्मीरो और कुहिस्तानी आ जाती हैं। शीना इस वर्ग का शुद्ध उदाहरण है। कुहिस्तानी भारतीय सीमाप्रदेश के निकट अपरिमार्जित उपभाषा का वर्ग है जो पश्तू तथा भारतीय भाषाओं से प्रभावित है। शीना गिलगित्त तथा आसपास की घाटी में बोली जाती है। कहा जाता है कि गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' इसी प्राचीन कश्मीरी या पैशाची भाषा में लिखी गई थी, जो इस समय अप्राप्य है।

आर्य कश्मीर में ,—कश्मीर के मनमोहक प्राकृतिक दृश्यों नदी-नालों, पर्वतों, सरोवरों एवं चरागाहों को देखकर आर्य बहुत प्रभावित हुए होंगे। फलत: उन्होंने अपना निवासस्थान यहां भी बनाया। उनकी भाषा संस्कृत थी। यही कारण है कि कश्मीर के प्रसिद्ध स्थानों का नामकरण शताब्दियों के बाद भी संस्कृत में पाया जाता है। कश्मीरी पर वैदिक तथा संस्कृत का प्रभाव स्पष्ट रूप से अब भी दिखाई देता है। इस समय शुद्ध कश्मीरी में लगभग ६०% शब्द संस्कृत के पाये जाते हैं।

हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि यवनों के शासन-काल में इस देश की भाषा पर अरबी तथा फारसी का भी प्रभाव पड़ता रहा है। भाषा का क्रम गतिशील है निश्चित नहीं। कश्मीरी में चिरकाल तक अनेक शासकों—मुगलों, अफगानों तथा सिक्खों का—शासन रहा जिनके समय में फारसी ही देशभर की राजभाषा थी।

प्राचीनकाल में कश्मीरी भाषा की लिपि शारदा थी और यह गुरुमुखी के बहुत निकट है। कश्मीर का प्राचीन साहित्य हमें इसी लिपि में मिलता है जैसे लल्लवाक्य, बाणासुर कथा, साहिब कौल का जन्मचरित आदि।

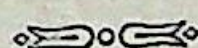
संस्कृत से आने वाली भारतीय भाषाएं प्राकृत तथा अपभ्रंश आदि के रूप में परिवर्तित हो गईं। फलत: कश्मीरी भाषा में कई शब्द प्राकृत तथा अपभ्रंश से भी आ गये। जो शब्द कश्मीरी भाषा में प्राकृत तथा अपभ्रंश के स्तरों से होकर न आये हों, अथवा जो शब्द इस प्रणाली से तत्सम या तद्भव के रूप में न आये हों, वे शब्द देशी या विदेशी कहलाये हैं।

हम कश्मीरी में संख्यावाची शब्दों का अध्ययन करते समय देखते हैं कि कोई शब्द संस्कृत से प्राकृत में आने के बाद हिन्दी में एक रूप तथा कश्मीरी में एक अन्य ही रूप में आया है यद्यपि अंतर थोड़ा ही रहा है। दोनों का स्रोत एक है तथा दोनों का प्रयोग साथ साथ चलता रहा है। जैसे हिन्दी का सात शब्द स्पष्टत: संस्कृत के 'सप्त' शब्द से आया है। यह प्राकृत में 'सत्त' और कश्मीरी मे 'सथ' हो गया है। अन्तिम शब्द का महाप्राण होना प्राय: कश्मीरी भाषा का एक नियम ही है जैसे 'दृष्टम्' का प्राकृत में दिट्ठ बन गया। कश्मीरी में आकर यह शब्द 'ड्यूठु' बन गया। इसी प्रकार मुष्टि, ज्येष्ट, रुष्ट क्रमश: प्राकृत में मुठ्ठी, ज्जेट्ठ, रुट्ठ के रूप में बदल गये और कश्मीरी में क्रमश: इन शब्दों ने म्वठ, ज्युठ, रुठ का रूप धारण किया है। इन उदाहरणों को दृष्टि में रख कर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि कश्मीरी ने प्राकृत से शब्द लिये हैं। इसी प्रकार अपभ्रंश से भी कश्मीरी ने शब्द लिए हैं। निम्न उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि किस प्रकार संस्कृत के शब्द अपभ्रंश के रूप में कश्मीरी में प्रयुक्त होते हैं जैसे अवन्तिपुर, ललितपुर, स्कन्दपुर, कनिष्कपुर, पद्मपुर, सिंह पुर, नौकापुर, सोम विहार, गणपतिविहार, षोड़शविहार आदि शब्द क्रमश: वून्तिपोर, ल्यतपोर, खन्दुर, कानिस् पोर, पंपोर, स्यंपोर, नावपोर, सूमपार, गणपथपार, धुरह यार आदि रूपों में बिगड़ गये।

उक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि कश्मीरी प्राकृत अथवा अपभ्रंश के रूप में, प्रयुक्त होती है।

प्राय: कश्मीरी भाषा की शब्दावली संस्कृत शब्दावली के समान ही है, संस्कृत के तद्धित प्रत्यय भी कश्मीरी में पाये जाते हैं। संस्कृत के तद्धित प्रत्ययों तथा कृदन्तों (Nominal Derivations & verbal Derivations) का प्रभाव कश्मीरी पर बहुत पड़ा है। जैसे संस्कृत के 'दृश्यमान' से कश्मीरी में 'हेण्ठमान' बन गया है। इसी प्रकार संस्कृत के कृदन्तों :—वीक्षण, रक्षण, पचन, नमन आदि से क्रमश: कश्मीरी में वुदुन, रछुन, पचन, नमुन आदि बन गया है। संस्कृत के क्त्वाना (Indeclinable Participles) का प्रभाव भी इस पर पड़ा हुआ दिखाई देता है जैसे :— कृत्वा, खादित्वा, लिखत्वा दत्वा, रखित्वा, धावित्वा, मृत्वा, चलित्वा, जित्वा इत्नादि से क्रमश: कश्मीरी में करिथ्, खनथ, लीलिथ्, दिथ्, रछिथ्, दविथ् मरिथ् चलिथ्, जीनिथ आदि बन गये है।

संस्कृत का उरच् प्रत्यय भी कश्मीरी में प्रयुक्त होता है (दन्तादिमय उरच्) जैसे :— नान्दुर, दान्दुर, वोवुर, गुबुर, लुबुर आदि।



नये ख़त पुराने ख़त

—डॉ० संसार चन्द्र

खत लिखने वाले के दिल का फोटो है और खत लेखन मानसिक मिलन। खत भेजना खुद को भेजना है और खत का पाना खत के प्रेषक को पाना है। खतों की किताबत का यह दस्तूर कब शरू हुआ होगा, यह बताना मेरे बल-बूते की बात नहीं पर इतना ज़रूर कह सकता हूं कि सबसे पहले पैगाम रसानी का यह नेक काम आंखों ने किया होगा—

पैगाम दिया है तो कभी पैगाम लिया है
आंखों से मुहब्बत में बड़ा काम लिया है

पुराने खत कैसे रहे होंगे—यह सोचते ही मुझे याद आता है कालिदास का भेजा हुआ खत—मेघदूत जिसका विषय आज भी वैसा ही ताजा और दिलफरेब है। दमयन्ती के खत के मजमून का तो पता नहीं। उसका पत्र-वाहक राजहंस सचमुच ही राज़दां निकला और खत का राज़ आज तक राज़ बना हुआ है परन्तु पद्मावती का हीरामन तोता बड़ा शोख था उसने उसके पैगाम का वह ढोल पीटा कि वह बेचारी जायसी के हाथों जहमत का शिकार हो गई। फिर बारी आई कबूतर की। उसने न जाने कितने दिलों की धड़कन को अपने पंखों की परवाज़ पर ढोया।

ग्राखिर पक्षियों, जानवरों ग्रादि के द्वारा जब काम न चला, तभी ग्रादम जात को यह सरदर्द मोल लेना पड़ा। सर्वप्रथम ब्राह्मण, नाई, मालिन, पनिहारिन, तंबोलन ग्रादि को यह काम सौंपा गया। मगर ख़त भेजने का यह तरीका भी खतरे से खाली नहीं था। कई बार पत्रवाहक ही हीरो बन जाता। दूतिका नायक की ग्रागोश का मज़ा लूटती ग्रौर बेचारी नायिका विरह के शीत से ठिठुरती रहती। पुराने ख़तों में मामला कुछ नाजुक ही रहता था क्योंकि कई बार ख़त के जवाब में महबूबा के ग्रब्बा शरीफ ही नमूदार हो जाते थे :

ख़त लिखा था उन्हें बड़े चाव से,
वो देखो उनके ग्रब्बा ग्रा रहे हैं जवाब में

एक पुराने ख़त का किस्सा मुझे याद ग्रा रहा है। कोई खूबसूरत नौजवान किसी वजीर के रास्ते का कांटा था। उसने उसे ख़त देकर दूर ग्रपने घर भेजा। वह थका-हारा दोपहर को वहां पहुंचा ग्रौर बाग में विश्राम के लिये सो गया। भगवान की करनी देखिये। उसी वजीर की सुन्दर कन्या जो वहां बाग में घूम रही थी सोये नौजवान पर लट्टू हो गई। उसकी जेब से खत निकाल कर पढ़ लिया। जिसमें लिखा था कि इस नौजवान को विष दे दो। वजीर की पुत्री ने झट तिनका उठाया ग्रौर ग्रांख के काजल से विष का विषया बना दिया। उसका ग्रपना नाम ही विषया था उनकी शादी हो गई ग्रौर वजीर के रास्ते का कांटा उसके दिल का काँटा बन गया।

सब से पुराना ख़त जो मुझे याद है वह मेरे बचपन का खत है। मेरे चचाजान लाहौर में रहते थे ग्रौर मैं ग्रपने गांव के स्कूल में पढ़ता था। जब चचाजान गांव ग्राये तो मैंने उन्हें स्कूल के पते पर ही ख़त डालने का इसरार किया क्योंकि मेरे एक क्लास फैलो को जब उसके सूबेदार पिता का पत्र क्लास में चपड़ासी लाकर देता था तब वह खुद को हीरो समझने लगता था। एक दिन चचाजान का पत्र भी वैसे ही चपड़ासी लेकर ग्राया। मास्टर जी ने मेरा नाम पुकारा तो मैं खत लेने के लिये इस ग्रन्दाज से ग्रागे बढ़ा गोया कोई

ट्रॉफी लेने जा रहा हूं। उस दिन मेरे खूब ठाठ थे। यार दोस्तों से घिरा-घिरा मैं खत को बार-बार पढ़ता था। खत में लिखा था :

"बरखुरदार नूरेचश्म तूल उमर राहते जान अजीजुल कदर बेटा"। रिसेस में मैंने स्कूल के डाकखाने से दो पैसे का कार्ड खरीदा और लिखने बैठ गया :

"बरखुरदार नूरेचश्म तूल उमर राहते जान अजीजुलकदर चाचा जी बाद उमरदराजी के वाज्या हो............" इस खत ने क्या-क्या गुल खिलाये, यह सब यहां बताना सम्भव नहीं है।

मुझे अपनी शादी के जमाने के दो खत अब भी याद हैं—एक जो मेरे ससुराल वालों ने "साहा चिठ्ठी" के रूप में मेरे पिता जी को लिखा था। दूसरा जो मेरे पिता जी ने वैडिंग-कार्ड के रूप में छपवाया था। पहला ख़त इस प्रकार था :

"स्वस्ति सिरी गणेशाय नम :"

लाला किरपाराम जी को मुंशीराम का राम राम बाचना। परम प्रभु की किरपा से माघ सुदी सत्तमी सम्मत् १९९५ प्रविष्टे १२ को मेरी पुत्री का आप के सुपुत्र से ब्याह पक्का होया है। आप इस मुहूरत पर मरी गरीबी और कमसिनी को ध्यान में रखते हुए बरात लेकर यहां पधारें।

तावेदार मुंशीराम
'खास बकल्कम खुद',

मेरे विवाह पर जो दावतनामा छपा था उसके एक सिरे पर हनुमान का दूसरे पर गणेश का और बीच में ॐ का चिह्न था उसके नीचे लिखा था :

"भगतों के जिस भाव से आते हैं भगवान
उसी भाव से आप भी दरसन दें सिरीमान"

पुराने ख़तों का कुछ न पूछिये कुछ ख़तों पर यह भी लिखा मिलता था :

चल चल लिफाफ़े कबूतर की चाल
जल्दी से ला मेरे दिलबर का हाल

कुछ ऐसे लहजे भी हुआ करते थे :

शीशी भरी गुलाब की पत्थर पे तोड़ दूंगी।
ख़त न आया आपका तो सर को फोड़ लूंगी ।।

बहुत से पुराने लोग न तो ख़त लिखना जानते थे और न ही पढ़ना। प्राय: लिखवाने वाला लिखने वाले से ख़त के अन्त में यह तहरीर करवा देता था :—"खत पढ़ने सुनने वाले को खत लिखने लिखाने वाले की राम राम।"

पुराने वक्त लद गये रहन सहन का तौर तरीका बदल गया। खत लिखने-लिखाने के अन्दाज बदल गये। डाक विभाग में भी नुमायां तब्दीलियां आ गईं। खत लिखने की कला पर कई किस्म की किताबें निकल चुकी हैं। प्रेम पत्र लिखने की टेकनीक पर रिसर्च हो रही है : —"आगे आगे देखिये होता है क्या"

पत्र शुरू करने की उर्दू, फारसी और संस्कृतनुमा शैली अब आऊट आफ डेट हो गई है। अंग्रेजीनुमा पत्रों का फैशन बढ़ रहा है। डियर, डार्लिंग, स्वीटी, हनी ऐसे सम्बोधनों से ख़त शुरू होते हैं। मुंडन संस्कार, नामकरण, उद्घाटन समारोह, विवाह आदि पर नये ढंग के खत सामने आ रहे हैं। एक नामकरण संस्कार के खत में लिखा था :

"अंकल !

आप आयें और मेरे लिए एक अच्छा सा नाम लेते आयें क्योंकि नाम वालों की इस दुनियां में मैं अभी बेनाम ही हूं।"

पिछले दिनों एक मुण्डन संस्कार का पत्र मिला जो शिकायत-भरे लहजे में था :

"अंकल !

मेरे डैडी और ममी ने मेरे बाल कटवा कर मुझे जोकर बना

दिया है। क्या आप मेरी इस बिगड़ी सूरत को देखने और सहानुभूति दिखाने भी नहीं आयेंगे।'

हिन्दी साहित्य के विविध वादों के प्रभाव भी नये खतों में प्रकट हो रहे हैं। एक रहस्यवादी-कम-छायावादी वैडिंग-कार्ड का नमूना देखिये :

"क्षितिज के उस ओर जा रहे जीवन पथ पर......
हम द्वैत से अद्वैत होने जा रहे हैं
विवाह की स्वप्निल मंगल वेदी में
आप आशीर्वाद के केशर-कलश से
कुछ गंधभीने रंगबिंदु आकर हम पर बरसाएं"

एक प्रगतिवादी निमंत्रण पत्र का नमूना इस प्रकार है :

"समाज की प्रचण्ड प्राचीरों को तोड़ कर
बुर्जुआवादी मां बाप की अन्ध मान्यताओं के स्तूप को
भस्म कर हम एक हो गये हैं।
यदि आप को और आपके बाप को आपत्ति न हो
तो गरम-गरम चायपान पर आप आ सकते हैं"

नई कविता और अकविता में जिस सपाट ब्यानी के नजारे देखने को मिल रहे हैं उसका प्रभाव नये खतों पर भी पड़ा है—एक मुण्डन संस्कार के निमंत्रण पत्र का नमूना इस प्रकार है :

"मेरे बेटे का मुंडन संस्कार
जो एक प्रकार से मेरा ही चुण्डन संस्कार है
उस पर आप एक विवशता में आमंत्रित हैं
क्योंकि
आप या तो इस सिचुएशन को फेस कर चुके हैं
या किसी दिन यह सिचुएशन आप को भी भोगनी होगी।"

आज जहां विज्ञान के नित नये चरण सामने आ रहे हैं वहां खत लेखन के भी नये रूप प्रकट होते जा रहे हैं।



कहानियां

बड़े शहर के लोग

—ज्योतीश्वर पथिक

दिल्ली परिवहन की डबल डकर बसों पर बैठ कर अकसर जब मैं आस पास की दृश्यावली देखा करता हूं तो नीचे चलने वाले इन्सान मुझे बौने लगा करते हैं। वैसे यह मानवीय प्रवृत्ति है कि जब वह बड़ा हो तो उसे दूसरा आदमी छोटा ही नहीं, तुच्छ महसूस होने लगता है। बस कार्नवालिस रोड से लोधी कालोनी पहुंचती है तो सवारियों की बाढ़ सी आ जाती है परन्तु उस रेले में से केवल कुछ ही सवारियों को बस मिल पाती है बाकी अगली बस की प्रतीक्षा में खड़ी रहती हैं। छोटी-छोटी सवारियों की इस कश्मकश को मैं एक बिगड़े नवाब की तरह देखता हूँ। इस शहर का हर व्यक्ति एक मशीन की तरह है। जो सुबह से शाम तक की अपनी ज़िन्दगी पहियों पर गुज़ार देता है। कार्नवालिस रोड पर बैठने वाली कुछ सवारियां लोधी कालोनी में उतर जाती हैं। बेचारा कण्डक्टर कुछ ही सवारियों से किराया वसूल कर पाता है। बाकी की सवारियां बिना किराया दिए खिसक जाती हैं। पांच नम्बर बस का कण्डक्टर चाचा बड़ी पैनी नज़र रखता है। जब कभी कोई सवारी बिना पैसे दिए भाग जाती है तो वह कह उठता है—"आप बिना पैसा दिए जा सकते हैं मगर चाचा की नज़रों को कोई धोखा नहीं दे सकते। मैंने सारी ज़िन्दगी पहियों पर घूमते बिता दी है।"

कालेज के लड़के रेलवे क्रासिंग पर गाड़ी रोक लेते हैं चाचा उन्हें मोटी गालियां देता है और लड़के—"चाचा हाय हाय" के नारों से उसकी गालियों का उत्तर देते हुए भाग खड़े होते हैं। चाचा गंदे-पीले दांतों को निकालकर खिसियाता हुआ कहता है,—"और निकालो गालियाँ, और ज़ोर से लगाओ नारे ! मेरे बच्चो ! महान् नेताओं को भी गालियां खाने में लाज नहीं आती......।" चाचा का भाषण गाड़ी के स्टार्ट होने की आवाज़ सुनकर सहम जाता है और चाचा एक बार फिर से सवारियों से पैसे वसूलने का काम शुरू कर देता है।

सेवानगर का स्टाप आने वाला है। कण्डक्टर की सीटी बजने से पहले ही लोगों की हलचल बढ़ चली है। कण्डक्टर चाचा चलती बस से उतरने का यत्न करती हुई एक बुढ़िया को रोक कर तुरन्त कह देता है—"माई ठहर जा अभी परलोक जाने में बहुत देर है।"

सेवा नगर की सड़कों पर गंदे बच्चों के हजूम नंग - धड़ंग घूमते हैं। ये काले-कलूटे राजकुमार प्रायः परिवार नियोजन के बड़े से बोर्ड पर पत्थर मार कर सारे प्रचार की कलई उघाड़ने की कोशिश करते हैं।

बस सेवा नगर से डिफैंस कालोनी की ओर मुड़ती है तो दृश्य बदल जाता है। संगमरमर के चिप्स से सजी ऊंची ऊंची कोठियां अपना वैभव बिखेरती हैं लाल, पीले और हरे रंग की नियान लाइट्स मानव की प्रगति एवं नवीनता का संदेश देते हैं और यहां इस संदेश के चलते सेवानगर के मैले कुचैले बच्चों का दृश्य धुंधला बन कर रह जाता है। एक बार फिर बस-स्टाप पर खड़ी सवारियों का सैलाब बस को अपनी लपेट में लेने को बेचैन हो उठता है और सवारियों की धींगा-मुश्ती में कण्डक्टर पिस जाता है। मेरे साथ की सवारियां उठ कर चली जाती हैं और मैं एक सुन्दर से चेहरे को खोजता हुआ उसके लिए अपने साथ वाली आधी सीट खाली कर देता हूं। मुझे जिस चेहरे की तलाश थी वह चेहरा अपनी चिर-परिचित मुस्कान बिखेरता मेरे साथ की सीट पर आ बैठा है। यह

लड़की रोज़ मेरे साथ बैठती है। डिफैंस कालोनी से ग्रेटर कैलाश तक केवल यही लड़की मेरा साथ देती है। यह लड़की वहां पर एक फ़र्म में टेलीफ़ोन ग्रॉपरेटर है। अपने खूसट बास की रौबीली आवाज़ के अतिरिक्त असंख्य भेदभरी आवाजें रोजाना इसके कानों को सहला जाती हैं। मुझे महसूस होता है कि यह लड़की एक टेप-रिकार्डर की तरह परिचित हंसी में एक से वाक्य बोलती है—"गुड आफ्टरनून", "स्पीक ऑन प्लीज़, "प्लीज होल्ड-ऑन", "ओवर टू डायरेक्टर" या फिर "देयर इज ए काल फ़ार यू, मदाम".........

कभी कभी मैं महसूस करता हूं कि यह लड़की कम्प्यूटर युग का जीता जागता परिचय प्रस्तुत करती है। यह लड़की जैट-एज का वह नमूना है जो अपने दुःख दर्द को छुपा कर सभी के साथ एक से अपनत्व का बरताव करती है और मनचले नौजवान, खूसट क्लर्क, स्लिम टाइपिस्ट—सभी इस हंसी का अर्थ निकालने में व्यस्त रहते हैं। गाड़ी स्टाप पर रुकती है और कालेज के लड़कों का समूह बस को खाली कर देता है। "पैसे तो देता जा साले"—कण्डक्टर चिल्ला कर कहता है। "चाचा......अभी माफ करदे, शाम को दे जाऊंगा" एक लड़के की आवाज़ चाचा की मूंछों से टकराती है। चाचा की गालियों के बांध में एक बार फिर दरार पड़ जाती है और गाड़ी पूववत अपना सफर जारी रखती है।

बस की गति पर्याप्त धीमी हो चली है—लगभग रींगती सी। मेरी साइड की ओर सड़क पर चलती हुई कुछ अल्ट्रामॉडर्न लड़कियां गाड़ी को हाथ देती हैं। गाड़ी में बैठे रोमियो अगला दरवाज़ा खोल देते हैं। लड़कियों के बैठते ही गाड़ी धीरे-धीरे फिर से गति प्राप्त करने लगती है।

मेरे साथ बैठी हुई टेलीफ़ोन ऑपरेटर—प्रतिभा—अर्थपूर्ण दृष्टि से मुझे देखती है और मैं उसकी बात समझ जाता हूँ। वह लिफ्ट मांगने वाली इन लड़कियों से घृणा करती है। "रईसज़ादियां फैश्नेबुल बनती हैं—न जाने इस लिफ्ट की इन्हें क्या कीमत चुकानी पड़ेगी। मगर इन्हें क्या......इनके लिए तो यह सब कुछ साधारण है, रुटीन है।"

गाड़ी चौराहे को पार करके रिंग रोड पर बढ़ने लगी है। मैं फिर प्रतिभा के बारे में सोचने लगा हूं। प्रतिभा का पति पिछले भारत-पाक युद्ध में स्यालकोट के मोर्चे पर अपनी टांग गंवा बैठा था। वह अब करोल बाग में सिग्रेट बेचता है। प्रतिभा कितनी अभिलाशाओं कितनी कामनाओं से लदी गांव से दिल्ली आई थी। उसे इस बड़े शहर के ऊंचे लम्बे भवनों में झांक कर देखने का चाव था, मगर हर बार उसका पति सूबेदार प्रेमसिंह कह दिया करता था—"ये सब भवन खोखले हैं प्रतिभा! इनकी चमक-दमक सब उधारू है।" कुछ वर्ष पहले तक उसे प्रेमसिंह की बात पर विश्वास न होता था मगर अब जब कि प्रेमसिंह एक अवकाशप्राप्त पैन्शनर हो चुका है और घर की गाड़ी को ठेलने का दायित्व प्रतिभा को निभाना पड़ रहा है, वह इन भवनों की वास्तविकता से परिचित हो चली है। प्रेमसिंह, बच्चे और प्रतिभा—सभी लोग मुंह अंधेरे ही अपनी अपनी मंज़िल की ओर चल पड़ते हैं और फिर इसके बाद शाम के मलगजी अंधेरे में चाय की टेबल पर ही मिल पाते हैं। प्रेमसिंह ने बहुत पहले सौ गज का एक प्लाट लेकर अपना घरौंदा तैयार कर लिया था अतः इस शहर की भीड़ में रहने की यातना उनके लिए अर्थहीन हो चुकी थी।

गाड़ी ग्रेटर कैलाश के स्टाप पर रुक जाती है। प्रतिमा उतर कर तेजी से अपने ऑफिस की ओर बढ़ जाती है। एक क्षण के लिए मेरे सोचने की प्रक्रिया थम जाती है परन्तु गाड़ी के चलते ही मैं एक बार पुनः अपने को प्रतिभा के विषय में सोचते रहने के लिए विवश अनुभव करने लगता हूं। सोच रहा हूं कि प्रतिभा के आफिस की सात मंजिला इमारत में आने जाने वाली हर टेलीफोन काल कैसे प्रतिभा के सामने फैले पी० बी० एक्स० बोर्ड पर आकर रुक जाती है और किस प्रकार कभी-कभी प्रतिभा प्रतिशोध की भावना में भर कर स्विचबोर्ड आफ कर देती है।

"हैलो मिस्टर......" मिसेज सूदन का चिरपरिचित स्वर मेरे कानों में गूंजता है और मैं प्रतिभा के विषय में सोचना बन्द करके मिसेज सूदन की ओर उन्मुख हो जाता हूं। अभिवादन होने से

पहले ही कण्डकटर आकर पूछने लगता है—"टिकट सिंगल कि डबल......मैडम जल्दी बोलिए न !" "ले भड़ुए, जो काटना है काट ले" मिसेज सूदन रुपये का नोट बढ़ा देती है। "इस दल्ले को शरम भी नहीं आती" मिसेज सूदन अपनी स्थूलकाय देह को मटकाती है। मैं आंखों ही आंखों में उसके लहजे का विरोध करता हूं मगर मिसेज सूदन तुरन्त कह देती है—"मिस्टर! यह लोग सीधी-शराफत की बात नहीं समझ सकते...इनसे जुबान चला कर ही निपटा जा सकता है।"

मिसेज सूदन की जुबान कुछ क्षणों के लिए विश्राम करने को रुकी है और गाड़ी फिर आगे बढ़ चली है। मिसेज सूदन नर्सरी स्कूल में किंडरगार्टन की टीचर है। घर और स्कूल—दोनों जगह बच्चों से घिरा रहने के कारण इनकी बातों में चिड़चिड़ापन आ गया है। अपने पति मि० सूदन के किसी केस में सस्पैंड हो जाने पर मिसेज सूदन मैदान में आई और अब मिस्टर सूदन तो पत्र-पत्रिकाओं में छपे 'क्रॉसवर्ड' और बाजार में बिकते लाटरी के टिकट खरीद कर अमीर बनने की धुन में हैं और मिसेज सूदन किसी प्रकार घर की गाड़ी चला सकने की चिंता में घुल रही हैं गोकि इस घुलने का उनके मोटापे पर मैंने कोई प्रभाव लक्षित नहीं किया है।

"कैलाश सिनेमा"—कण्डक्टर आवाज़ लगाता है।

मिसेज सूदन गाड़ी से उतरकर गली के नर्सरी स्कूल में चली जाती है। बहुत दिनों बाद आज फिर कॉमरेड वीरपाल इस बस में चढ़ आया है। परिणामस्वरूप गाड़ी एक अपरिचित शोर से सहम उठी है। कामरेड जोर - जोर से चिल्ला रहा है—"यह साले लाले हमारा ख़ून निचोड़ कर रहेंगे। सब साले भ्रष्टाचारी हैं। सुबह से मेरे पांचों बेटे लाइन में बंधे खड़े हैं अब छटा नम्बर हासिल करने मेरी पत्नी भी क्यू में जुड़ गई है।" मैं खिड़की से झांक कर सड़क पर रींगती हुई गाड़ियों को देखने लगता हूँ परन्तु कामरेड की आवाज़ मेरे अनचाहे मेरे ऊपर से गुजरने के स्थान पर मुझे छूने लगती है। मैं बाध्य हो जाता हूँ कि उसकी बातें सुनूं। कामरेड चिल्लाए जा रहा है—"फैमिली प्लानिंग का नारा लगाते हैं। मैं कहता हूं

दो एक बच्चों वाले लोग भूखे मर जाएंगे। उनके घर में कभी पूरा खाना नहीं होगा। कभी चीनी के लिए क्यू, कभी डालडा के लिए। कभी एक क्यू कभी दूसरी क्यू। कभी यहां लाईन कभी वहां लाईन। हमारी सारी जिन्दगी इन पंक्तिग्रों की भेंट चढ़ जाती है। दूर क्यों जाते हो, इस बस में चढ़ने के लिए भी क्यू में खड़ा होना पड़ता है इस पर ग्रापको यह भी ज्ञात नहीं रहता कि यह डिक्टेटर-वादी कण्डक्टर न जाने कब किस सवारी का नम्बर ग्राते ग्राते गाड़ी की घंटी बजा देगा।

"पैसे निकाल बाबू लीडरी बस से बाहर दिखाना......" कण्डक्टर चाचा ग्रपने उसी व्यंग्यपूर्ण लहजे में वीरपाल से सम्बोधित होता है ग्रौर वीरपाल ग्रपना पास निकाल कर चाचा का मुंह चिड़ा देता है।

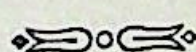
बस चौराहे की लाल बत्ती के प्रति सम्मान प्रदर्शित करती कुछ क्षण खड़ी रहती है। हरी बत्ती का भी सम्मान होना चाहिए ग्रतः बस फिर चल पड़ती है। वीरपाल की रुकी हुई गाड़ी भी फिर से गति पकड़ने लगती है—"महगाई भत्ता तो सरकार ने बढ़ा दिया पर इससे होगा क्या ? कीमत तो बनिए ने पहले से ही बढ़ा रखी है कहता है—इन्सपैक्टर को पूरे पांच सौ की घूस दी है ग्रब पंद्रह सौ भी न बनाऊं ..? "महंगाई ग्रौर घूस के दीमक हमारी जिन्दगी को चाट कर खोखला कर रहे हैं।" गाड़ी स्टॉप पर रुकती है ग्रौर वीरपाल उतरकर चल देता है। मैं महगाई, घूस ग्रौर क्यू को भूल कर शापिंग सेंटर से निकलती हुई, मिनी स्कर्टों में झूलती लड़कियों को देखने लगता हूं। ये लड़कियां इम्पोर्टेड माल ग्रौर फैशन की होड़ में ग्रधिक से ग्रधिक दाम देने को तैयार हो जाती हैं। इनके लिए चीज़ कैसी भी हो उसके दाम ग्रधिक होने चाहिएं। हर चीज़ का दाम बढ़ा-चढ़ा कर बताने में इन्हें गर्व महसूस होता है, इनका ग्रहं संतुष्ट होता है।

"बाबू, क्या देख रहे हो"—वह मेरी चोरी पकड़ लेता है।

"नहीं, कुछ नहीं....."—मेरे मन का कायर मुझे सच बोलने से रोकता है।

"इन तितलियों को मत देखो...बड़े घरों की यह रईसज़ादियां हमारे समाज को तबाह किए जा रही हैं। तुम जानते हो शॉपिंग के शौक में मेरी और तुम्हारी तनख्वाह ये लोग घंटे दो घंटे में उड़ा देती हैं। इनके पास इतना पैसा कहां से आता है? वह मेरी आंखों में तैरते प्रश्न चिन्ह को भांप लेता है—"चुप यह एक ट्रेड सीक्रेट है..!" इतना कहने के साथ ही वह एक तितली के साथ खड़े हिप्पीकट भवरे की ओर इशारा कर देता है।

गाड़ी का आखिरी स्टाप आ जाता है; मैं उतर कर इस बड़े शहर के लोगों की भीड़ में शामिल हो जाता हूं जहां मिसेज सूदन, कामरेड वीरपाल, प्रतिभा और यह रंगीन तितलियां अपने अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रही हैं। इन सभी का अपना अपना दर्द है, अपनी अपनी सलीब।



परित्यक्ता

—दुर्गा दत्त शास्त्री.

रात की घोर स्तब्धता को चीरती हुई ट्रेन चली जा रही थी। कई स्टेशन आये-गये। उन पर गाड़ी रुकी चल दी। यात्रियों का शोर भी कम न था। पर बेचारी मंजु अथाह निराशा में डूबी अपनी जगह बिना हिले डुले बैठी थी। मानो वह कोई निष्प्राण प्रतिमा हो।

इस से पूर्व भी वह कई बार इस गाड़ी पर आई गई थी। कैसा उत्साह होता था तब! किस तरह वह सब से हिल मिल जाती थी! पर आज उस के तथाकथित प्रेमी ने उसका दिल तोड़ दिया था।

मोहन आज से चार बरस पहले उसके नगर में सब इंस्पेकटर पोलीस के पद पर नियुक्त हो कर आया था। पड़ोस में ही उसने किराये पर मकान लिया था। बड़ा ही मिलनसार, मधुर-भाषी, शील और सौन्दर्य दोनों का धनी। विचारों में आधुनिकता भी थी। लड़कियों वाले पूछताछ करने लगे। देखा देखी भी हुई, और उसने मंजु को पसंद कर लिया पर शर्त यह रखी कि शादी कोई दो तीन बरस नहीं होगी क्योंकि वह अपनी बहन की शादी के बाद ही अपनी शादी करेगा। मंजु स्कूल में पढ़ाती थी, यह भी तय पाया

कि शादी के बाद मंजु सर्विस नहीं करेगी। मंजु की एकमात्र मां ही मां थी। कभी कभी वह मंजु के घर भी ग्राने जाने लगा। खूब ग्रागत स्वागत होने लगा। दावतें उड़ने लगीं।

मोहन ने मां को पत्र लिखा—"मां मैं तुम्हें एक ऐसी बहू ला कर दे रहा हूँ जो तुझे देवी मान कर पूजेगी। मैंने बात पक्की कर ली है। शादी निशि (बहन) की शादी के बाद होगी। तुम चाहो तो ग्राकर देख लो। मां चिट्ठी पढ़ कर निहाल हो गई। उसने भगवान् का लाख लाख धन्यवाद किया। चलो शादी के लिये माना तो है। नहीं तो इस लड़के ने नाक में दम कर रखा था। कई रिश्ते ग्राये गये। दो रिश्ते तो मान कर भी मुकर गया। शायद हम लोगों ने माने थे इसलिए इसे पसंद न ग्राये।

मोहन की मां ग्राई ग्रौर मंजु को देख गई। मंजु के सौन्दर्य, सौजन्य ग्रौर माधुर्य ने उसका मन मोह लिया। मंजु की मां ने कहा—"बहन जी मैंने ग्रौर मेरी मंजु ने पूर्वजन्म में कोई बड़ा ही शुभ कार्य किया था कि हमें मोहन जैसा वर प्राप्त हुग्रा। ग्राज यदि मंजु के पिता होते तो कितने प्रसन्न होते।" उसका कंठ भर ग्राया ग्रौर ग्रांखों में मोती उमड़ पड़े।

मोहन की मां के नेत्र भी छलक उठे। मोहन के पिता भी तो उसका शादी की साध लिये ही स्वर्ग चले गये थे। मंजु की मां ने कहा—"बहन जी ग्राज लड़की को ग्रच्छा घर वर नहीं मिलता ग्रौर लड़के शादी के लिए मानते ही नहीं।" मोहन की मां ने जवाब दिया—"सच कहती हो बहन, बिल्कुल सच कहती हो। यह कहां मानता था। हम तो इसे समझा समझा कर हार गये थे।"

दो बरस बीत गये। निशि का विवाह हो गया। मंजु ने उसके विवाह में जितना कुछ कर सकती थी, किया। एक बार मोहन की मां बीमार पड़ गई तो मंजु स्वयं सेवा के लिए उपस्थित हो गई। बहुत सुयश प्राप्त किया, उसकी सेवा सुश्रुषा ने। ग्रड़ोस-पड़ोस मोहन की मां के सौभाग्य की सराहना करता ग्रौर कहता—"मंजु जैसी बहु भगवान् करे सब किसी को मिले।"

अचानक मोहन को विभागीय परीक्षा के लिये जाना पड़ा। वहां उस पर किसी बड़े अधिकारी की दृष्टि पड़ी। पूछताछ हुई। हाय रे महत्त्वाकांक्षा। उसने हां कर दी। मां ने विरोध किया। पूछा—"उस बेचारी का क्या होगा?" तब उसने बड़ी ढिठाई से उत्तर दिया—"वह भी कहीं दूसरी जगह शादी कर सकती है।" मां ने कहा—"पर बेटा," वह बीच में ही बोल उठा, "पर वर कुछ नहीं यदि तुम नहीं चाहती कि मैं यहां चाहता हूँ शादी न करूं तो मैं कहीं भी शादी नहीं करूगा।"

मां को यह सब अच्छा नहीं लगा। पर वह कर भी क्या सकती थी? अभी उसे छोटे को पढ़ाना है। दूसरी लड़की के लिये भी सब कुछ करना है। बस दिल मसोस कर रह गई।

मंजु मोहन को कई पत्र लिख चुकी थी। पर वह अब उसके पत्रों का उत्तर तक नहीं देता था। उसने हिम्मत की और मोहन के पास पहुँच गई।

'देखो, मंजु तुम्हें यहां नहीं आना चाहिए था। तुम कहोगी मैंने तुम्हारे पत्रों का उत्तर नहीं दिया सो समय ही नहीं मिला। रही शादी की बात तो लाचारी है। अभी तो मैं बाल बाल निशि के विवाह के कर्ज से दबा हूँ। अभी और दो बरस तो मैं शादी के सम्बन्ध में सोच भी नहीं सकता।'

मानो चतुर शिकारी विमुग्धा हरिणी को भरमा रहा हो।

मंजु को उसकी बातों से कुछ कुछ कपट-दुर्गन्ध का आभास हो रहा था। पर वह स्वप्न में भी नहीं सोच सकती थी कि उसके साथ इतना बड़ा विश्वासघात हो सकता है

लौटते समय उसके मन में आया कि मां जी से भी मिलती चलूं, शायद वे कोई रास्ता निकालें, मेरी सहायता करें।

मंजु मोहन के घर पहुंची। मां से मिली। मां दुविधा में थी। क्या इस सुकुमार कली को क्रूर सत्य से अवगत करा दूं। पर किसी अज्ञात भय तथा शंका से वह बोली नहीं। मंजु ने

अनुभव किया कि पहले की सी आत्मीयता तथा प्रसन्नता का आज अभाव है। रात भर इधर उधर की बातें होती रहीं। मंजु चाह कर भी अपने हृदय की बात न कर सकी और मां भी हृदय पर पत्थर रखकर सच्चाई प्रकट न कर सकी।

मंजु अपने घर पहुँची। उसकी मां ने पूछा—"क्या कहते हैं बेटी?" बेटी क्या कहे? बोली—"मां कहते हैं, अभी लाचारी है। बहन के विवाह का कर्ज सिर पर है।" 'ठीक तो कहते हैं। पर तुझे कहना चाहिए था कि मुझे गहने-कपड़े कुछ नहीं चाहियें। मैं आप को किसी का देनदार नहीं होने दूंगी। पर तू लजा गई होगी। अच्छा, अब फिर तू जायेगी तो तेरे साथ मैं भी चलूंगी।' मंजु मां के भोलेपन पर तड़प उठी।

शाँत सरोवर में जैसे किसी ने पत्थर फैंक दिया हो। यही दशा मंजु के हृदय की थी। उसकी शांति भंग हो गई थी।

अज्ञात शंकाएं तथा चिन्ताएं प्रेत-प्रेतनियों की तरह उसे घेरे रहतीं। एक रात उसे स्वप्न आया। शकुन्तला दो तापसियों और दो ऋषि कुमारों के साथ अपने प्रियतम के पास—नहीं नहीं राजा दुष्यन्त के पास—गई। पर दुष्यन्त ने उसे अपनी पत्नी मानने से इन्कार कर दिया। तब एक ऋषि कुमार राजा से अनुनय-विनय करने लगा। दूसरा ऋषि कुमार शकुन्तला को डांट बता रहा था, कह रहा था—'इसे अपने किए का फल भोगना ही चाहिए। इसने बिना किसी को पूछे, बिना इस कुटिल को जाने-पहचाने इस से प्रेम किया, प्रेम नहीं पाप किया, तो जो बोया है—काटे।' मैंने पाप नहीं किया, मैंने पाप नहीं किया, शकुन्तला चिल्लाई। मंजु की आंखें खुल गईं और बरसने लगीं।

उसने दूसरे दिन मोहन को पत्र लिखा। उसके मन में आया कि वह चिट्ठी में रात के स्वप्न की चर्चा करे। पर वह उसकी कल्पना मात्र से दूर रहना चाहती थी। यद्यपि लक्षण वैसे ही थे। उधर से कोई प्रत्युत्तर नहीं था। उसने मोहन की मां को भी लिखा था। उसने अवश्य इतना संकेत कर दिया कि मैंने मोहन से बात चलाई थी। पर उसने हां-ना कुछ नहीं कहा। बेटी! है तो सब

कुछ उसी के हाथ में। मैं तो कुछ भी नहीं। पराश्रित तथा पराधीन और वह भी बूढ़ी। मुझे लच्छन अच्छे नजर नहीं आते।

मंजु के मन-प्राण सिहर उठे। वह अपनी व्यथा-कथा किसे सुनाये? कौन उस घायल के हित चन्दन था? संसार तो केवल अपने सुख-स्वार्थ की बात सुनता है। किसी के दुःख और स्वार्थ की बात सुनने की किसे फुर्सत है? आज किसी के सौभाग्य और सुख की बात सुन कर हर्षित होने वाले कहीं नहीं मिलते। हां! किसी के दुःख और दुर्भाग्य पर तरह तरह की बातें बना कर प्रसन्न होने वाले बहुत मिलेंगे।

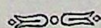
मंजु बहुत बेचैन थी। सोचती थी क्या मैं छली गई? तो क्या मेरी नाव मंझधार में डूबने के लिये छोड़ दी गई। उसके सामने कई अभागिनों की तस्वीरें मंडराने लगीं। जिन की नावें इसी तरह छोड़ दी गई थीं, डूबने के लिये। मंजू की मां देख रही थी कि बच्ची बहुत परेशान है। किसी भी काम में उसका मन नहीं रमता। वह बिना तेल की बाती की तरह धुंधुआती रहती है। मंजु की वेदना मां के लिये असहय है। उस मां के लिए भी। पर दोनों बेचारी असहाय, निःशक्त, बेबस हैं।

मंजु विमोहित सी मोहन को मिलने के लिए चल पड़ी। उस ने निश्चय किया कि इस बार वह निर्णय करके ही लौटेगी। पर गाड़ी में बैठे बैठे विचार बदला कि मुझे गांव जा कर मां से तो मिल लेना चाहिए। वह गांव पहुँची। घर में ताले लगे थे। साथ के घर गई। उसे देख उस घर के सभी लोग विस्मित हुए, दुःखित हुए। घर की वृद्धा के पास मंजु बैठ गई। उसने पूछा— "माँजी यह लोग......" "हां हां बेटी बतलाती हूं, थोड़ा आराम कर लो, पानी पी लो। कहो, घर में तुम्हारी मां तो ठीक है न?"

"हां मां जी घर में तो सब ठीक है।" "अच्छा तो थोड़ा पानी पी लो।" उसने पानी पिया। कुछ स्वस्थ हुई। बुढ़िया ने पूछा— "बेटी कितना पढ़ो हो? हाई स्कूल पास किया होगा। कहते हैं पढ़ने लिखने से ही मनुष्य मनुष्य बनता है। अनपढ़ तो

गंवार होते हैं, पशु होते हैं। पर बेटी मैं कुछ और ही देख रही हूं। आज पढ़ा लिखा तो दूसरे को छलता है, किसी का दिल तोड़ता है। विश्वासघात करता है। उसके दिल में किसी के लिये कोई स्नेह नहीं, प्यार नहीं। किसी के लिये मान नहीं। यह क्या पढ़ाई हुई बेटी!" बुढ़िया का कांपता हुआ हाथ मंजु के सिर पर था। गला भरा हुआ, आंखें डबडबाई हुईं। वह बोली—"मेरी बच्ची। तेरे साथ बहुत बड़ा छल हुआ है। विश्वासघात हुआ है। तेरे साथ ही नहीं तेरे जैसी कई रोज़ छली जाती हैं और न जाने कब तक छली जाती रहेंगी। ये लोग शहर गए हैं। मोहन की किसी बड़े घर में सगाई हो रही है देखो अपने आप में रहना। तेरा सच्चा सुख तेरी मां के चरणों में है बेटी।" वृद्धा के आश्वासन से, कर्त्तव्यबोध से, उसके अन्धेरे संसार में क्षीण सा प्रकाश उसे दिखाई दिया। उसने कहा—"मां जी ठीक कहा आपने। मैं...मैं...आपकी प्रेरणा की कृतज्ञ हूँ। अच्छा चलती हूं। अभी गाड़ी का समय है।"

गाड़ी अपनी गति से खटाक, खट खट, खटाक खट खट की ध्वनि को दुहराती जा रही थी। मंजु विचारों में खोई हुई गत जीवन के ताने बाने में उलझी हुई थी। कौन आया, कौन गया? कहां गाड़ी रुकी, कब चल दी? कुछ नहीं जानती। सहसा ज़ोर का झटका लगा, गाड़ी रुकी, सर्वत्र खलबली मच गई। चर्चा थी कि किसी जवान लड़की ने गाड़ी के आगे कूद कर आत्महत्या कर ली है। मंजु रेल के झटके से अपनी स्थिति में आ गई थी। सहसा मुंह से फूट पड़ा कि कोई मेरी तरह बेचारी वंचिता होगी या परित्यक्ता।



और एक निर्णय

—निर्मल विनोदी

"खबरदार जो कुछ अंट-शंट बका तो !"—आवेश।

"जीभ खींच लोगे ?"—जिज्ञासा।

"हां !"—उत्तर।

"उंहऽऽ ! जीभ खींच लेगा। बड़ा आया जीभ खींच लेने वाला।" -प्रतिक्रिया।

"बकवास बन्द !"—बौखलाहट भरे स्वर में एक और आदेश।

"बकवास बन्दऽऽ !" प्रत्युत्तर।

"सवेरे से बढ़-बढ़ कर चपड़-चपड़ कर रही है। बदतमीज ! हराम.........!"—और एक आवाज़ घाट पर कपड़े धो रहे धोबी की चटाख-पटाख के जोड़ की।

सुन्दरी चीखने - चिल्लाने लगी। कुहराम मच गया। —चरमोत्कर्ष।

वह समझ गया कि यह अंतिम ध्वनि बांके के जोरदार, भारी हाथ से पड़े तमाचे की है। 'कोई पुरुष होता तो तमाचे का उत्तर खूब देता, पर सुन्दरी ठहरी नारी.........बेचारी'—उसने सोचा।

'मदिरोन्मत्त पशु !' उसने मन ही मन, बांके के नाम के साथ दो शब्द और जोड़ दिये।

उसे अपनी कनपटी की पड़ोसी नसें धुक धुक करती प्रतीत हुईं।

'ये लोग... ..इन लोगों के कारण यहां भी...कुछ नहीं हो सकता......कुछ भी तो नहीं।

उसने झल्ला कर किताब बन्द कर दी।

'इससे तो वहीं अच्छा था'—वह बुरी तरह खीझ चुका था। उसने एक भरपूर जम्हाई ली।

बाहर इतनी ठण्ड और अन्दर ! गर्म, बन्द कमरे में चलती नोक-झोंक—जिसका पटाक्षेप अप्रिय लगने वाली कटुता की सृष्टि करने के पश्चात् ही हो पाया था।

'एक अकेले युवा-दम्पति को, जिसे ब्याह किये अभी एक वर्ष भी पूरा नहीं हो पाया और जिसे इस समय, लिहाफ की मादक गर्माहट में दुबक, चोंचबाजी या प्रेमालाप का आनन्द लेना चाहिए या फिर चैन से सोना चाहिये...ये मूर्ख...! अजीब गोरखधन्धा है',—उसने सोचा।

विचित्र ताने-बाने में उलझे हुए क्षणों में, कसी हुई देह को स्वेटर के कसाव से मुक्त कर वह बिस्तर में घुसा और हाथ बढ़ा कर टेबल-लेम्प बुझा दिया। अंधेरे ने, तवे की पिछली ओर वाली एक मुट्ठी राख उसकी आंखों में झोंक दी।

सीपियां बन्द हो गईं, लेकिन उनमें नींद के मोती न थे। ... एक दाएं...एक बाएं...करवट...करवट...फिर करवट...

उसने लिहाफ ऊपर तक खींच कर लम्बी-लम्बी सांसें लेते हुए बिस्तर गर्माने का उपक्रम आरम्भ कर दिया, पर नींद किसी दूसरे मुहल्ले में टहल रही थी।

मुकुल, राजौरी का रहने वाला बीस वर्षीय युवक, जम्मू में एम० ए० कर रहा था। बी० ए० में इतिहास और हिन्दी इसके प्रिय विषय थे और अब वह एम० ए० भी हिन्दी में ही कर रहा था। दैहिक तत्वों की दृष्टि से समान होने पर भी वह अन्य यार लोगों से भिन्न था। उस का बुद्धि-तत्त्व, उसके सोचने-विचारने का ढंग, सर्वथा अलग प्रकार का था।

उसे याद है वह वार्ता...

× × × ×

बी० ए० के पश्चात्, 'आगे क्या ?' को चर्चा का विषय मान कर अपना - अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए रामी, उसी नीली आंखों और भूरे बालों वाले लड़के ने, उसे फटकार भरे स्वर में कहा था,—"अरे ! हिन्दी की एम० ए० ? क्या स्कोप है उसका ?"

"शास्त्री बनेगा ? भोंदू कहीं का"—यह स्वर बड़े बड़े कालरों और चटख शोख रंग की कमीज़ पहने, 'देवानन्दी स्टाइल' में आँख फिरा कर बात कहने वाले माथुर का था।

"कैरियर स्पायल करने पर तुला है......बुद्धूऽऽ ! प्यारे हम तो ज्वायन करेंगे 'लॉ-डिपार्टमैंट' "—मोहित ने अंतिम शब्दों पर जोर देकर कहा था।

"ऐय्याशी ही ऐय्याशी ! क्यों मिट्ठू ?"

"हाय-हायऽऽ ! कहां मारा भई अरनेस्ट"—और 'इम्पॉटैंस आफ बींग अर्नेस्ट' के अर्नेस्ट से प्रभावित मोहन उर्फ मिट्ठू मियां ने च्यूइंग-गम' चबाते हुए, बायीं आंख जरा खास अंदाज में दबा कर चटखारा लिया था।

× × × ×

...याद है, उसे सब याद है।

और, इस वार्तालाप के कुछ ही दिनों बाद उसने 'हिन्दी-डिपार्टमेंट' में प्रवेश ले लिया था।

कठिनाई आई थी होस्टल में दाखिले के समय। सो, वह भी उस के व्यवहार से संतुष्ट डॉ० बत्रा की सिफारिश से तुरन्त दूर हो गई थी। पर होस्टल में, वह अधिक दिनों तक टिक न पाया। 'सिन्सैरिटी' या 'रिस्पान्सिबिलिटी' से बिल्कुल अनभिज्ञ होस्टल-विद्यार्थी, क्या किया करते हैं, किस ढंग से पढ़ते हैं, इस का परिचय उस ने थोड़े ही समय में प्राप्त कर लिया।

यद्यपि, कालेज-होस्टल में भी यह सब कुछ था, उसने इसकी परवाह कभी नहीं की। उसे कभी इतना बुरा भी तो न लगा था। सम्भवत: उसके कमरे का सब से अलग-थलग—दूसरी मंज़िल के परले सिरे पर—कोने में स्थित डा० वोहरा के फ़्लेट के साथ होना ही इसका एक बड़ा कारण था।

रात-रात भर फब्तियां कसना, गुल-गपाड़ा, फ़िलमस्टार्ज़ और हसीनों के रंगीन चर्चे, धुत्त हो कर फ़्लैश खेलना और ज़रा-ज़रा-सी हेरा-फेरी के अंदेशे में मार-पीट कर बैठना, लड़ना-झगड़ना, चाकू-छुरे नचा-नचा कर शोहदेबाज़ी के रंग दिखाना, नित नई तितलियां फंसा कर लाना जहां अधिकांश विद्यार्थियों का पेशा-सा बन गया हो वहां, उस सरीखे विद्यार्थियों का न टिक पाना अप्रत्याशित नहीं हो सकता।

उसे लगता कि यह वातावरण दमघोंटू है, जान-लेवा है, अस्वस्थ कर देने वाला है और इस घुटन और सड़ांध में वह नहीं रह सकेगा।

पढ़ाई का सत्यानाश हो जाएगा—यही सोच, वह वहां से निकल भागा, किन्तु निकल भागने के इस उद्यम से पूर्व, उसने, पीरमिट्ठा चौक में खुलने वाली एक तंग गली में पच्चीस रुपये मासिक किराया पर एक छोटा सा "कमरा" ठीक कर लिया था।

पच्चीस रुपये किराए पर ठीक किया हुआ यह कमरा, कमरा होता तब तो ठीक था, किंतु एक बड़े-से कमरे में पलाई-वुड की—छत्त से दो एक फुट नीची उठा दी गई—पार्टीशन-वाल के इस ओर वाला

चौकोर से आकार-प्रकार का यह कमरा अपने आप में विचित्र ही थी।

होस्टल के गुल-गपाड़े में दरवाजे को बोल्ट करके अन्दर बैठा जा सकता था और अन्दर बैठ कर शोर से बचा भी जा सकता था—पढ़ा जा सकता था। पर यहां ! यहां की यह बक-झक और लात-घूसों की मार से त्रस्त सुन्दरी की हाय-तौबा—पार्टीशन-वाल से छन कर साफ निकल आती है—खुले सुराखों वाली छलनी से रेत के कणों की तरह।

पार्टीशन-वाल खड़ी कर के बनाये गये स्टोरनुमा इस कमरे में सहूलियत के नाम पर यदि कुछ था तो केवल इतना कि गली में, उत्तर की ओर खुलने वाली एक अदद खिड़की......और बस !

होस्टल से डेरा-डण्डा उठा लाने वाले दिन ही उसे एहसास हो गया था कि अधिक देर तक यहां भी न जम पायेगा, पर—मरता क्या न करता !

'किसी विकल्प के मिलने तक तो रहना ही होगा......दो मास का अग्रिम किराया यों ही दे दिया'—उसने सोचा।

दिन-दिन करते बीस दिन निकल ही गये थे और इन बीस दिनों में, यदि उसने कुछ राहत महसूस की थी तो केवल तब, जब बांके ट्रक लेकर श्रीनगर 'ट्रिप' लगाने चला जाता था।

× × × ×

इस बीच सुन्दरी की सिसकियों से भरा टेप कब समाप्त हुआ और दूसरी ओर होने वाली हल-चल कब थमी, उसे ज्ञात ही न हो सका।

वे सो गये थे।

उसे लगा जैसे नींद ने उस की पलकों पर पहरे बैठाने आरंभ कर दिये हैं—ठीक, प्रेमी-युगल पर बैठने वाले सांसारिक पहरे की तरह।

× × × ×

नींद उचट गई।

वह नींद पर हावी हो चला था।

टेबल पर पड़ी टाइम-पीस की सूईयां बारह से दो दौड़ें अधिक बनाने को आतुर हो रही हैं—उसने देखा। रेडियम-डायल चमक रहा था।

कान सचेत हो उठे।

परली ओर कुछ खुसर-पुसर चल रही थी।

गहन निविड़ता में बर्तन कलई करने वाले की चमड़े की गुत्थी से मुक्त होने वाली आवाज़ से मिलती-जुलती सांसें बज रही थीं।

"...तु...म्हा...रे......मुंह से...बूऽऽ....." क्षीण ध्वनि में छटपटाता वाक्य कहीं बीच में ही दम तोड़ गया।

चुंबन कर्णपटों पर दस्तक देने लगे।

किसी लावे के खौलाव से भीतर ही भीतर तपने लगा वह।

अपने श्वासों के वेग में स्पष्ट होते गत्यांतर को उसने, किसी गहराई विशेष तक अनुभव किया।

उसे लगा, जैसे, वह भी उन दो जीवित खालों से कहीं, किसी सीमा तक जुड़ी हुई तीसरी खाल है।

उसका हाथ टेबल-लैंप की ओर बढ़ते बढ़ते एकबारगी ही थम गया। उसने कुछ सोच कर धीरे से खिड़की खोली।

हवा का एक तीव्र झोंका उसकी हड्डियों को कहीं गहरे तक चीरता हुआ कमरे भर का चक्कर लगाने चल दिया।

उसने हड़बड़ा कर खिड़की के पट, एक दूसरे पर दे मारे। पर तभी, टेबल-लैंप की ओर बढ़ते उस के हाथ को पीछे धकेलने वाली सोच ने उसे झकझोर दिया—एकाएक।

उसे अपना-आप पानी में डूबता जान पड़ा।

एक हद तक सहज हो जाने के पश्चात उसे लगा—कि स्थिति काफ़ी दिलचस्प है।

—कि उसकी आंखें, इस अंधेरे में, सायास रास्ता टटोलती और खूंटियों से लटक रहे कपड़ों पर से फिसलती-फलांगती, सामने वाली नुक्कड़ में पड़ी अटची पर जा टिकी हैं।

—और ऐसी दिलचस्प स्थिति में, उस ने एक निर्णय ले लिया है।



दबा हुआ लावा

—जगमोहन

पंखे में से आती धीमी सी आवाज़ उसकी विचार-धारा भंग कर देती है। पंखे की आवाज़ को वह ध्यान से सुनने का एक प्रयास करती है, पर वह आवाज़ पंखे के परों के साथ घूमती रहती है, उसकी पकड़ में नहीं आती। वह उकता कर अपना ध्यान पंखे से हटा लेती है और नाइट-बल्ब को ताकना शुरू कर देती है। थोड़ी देर बाद नाइट-बल्ब की रोशनी उसे आँखों में चुभती महसूस होती है पर वह करवट बदलना नहीं चाहती। आंखों में जलन की अनुभूति से उसे सन्तोष सा मिलता है—जो लोग स्वयं को कष्ट देकर आनन्द प्राप्त करते हैं शायद उन्हें...हां, हां...उन्हें मेसोकिस्ट कहते हैं। उसे कहीं पढ़े शब्द याद आते हैं। उसे अपनी याददाश्त पर गर्व का अनुभव होता है।

नाइट-बल्ब से सटी दीवार को ताकते हुए उसे अपने भीतर धौंकनी सी चलती महसूस होती है। छाती से गर्म सा कुछ उठ कर गले के पास आकर अटक जाता है। उसका मन रोने को करता है पर उसकी सहज चेतना उसे पीठ पीछे सोए पति का एहसास करवाती रहती है। तभी उसे आंख के नीचे गीला सा कुछ छूता है, तो वह चौंक जाती है। अरे ये तकिया कैसे भीग गया? तो क्या

आज फिर सोचते-सोचते रोने लगी हूँ ? जब भी मैं अपने विषय में गम्भीरता से कुछ सोचना चाहती हूं, मेरे अन्दर का सारा विद्रोह एकदम बह जाता है।

वह सोचते-सोचते करवट बदल लेती है। उसे अपनी टांगें बहुत भारी लगती हैं। मानो दिन भर की सारी थकान उनमें उतर आई हो। पति का चेहरा देखते ही उसे वितृष्णा सी होने लगती है। क्या उसने ऐसे ही पति के सपने संजोए थे ? एक दशक के वैवाहिक जीवन और दो लड़कों के मां-बाप बनने के बाद भी एक अजनबीपन सा है। एक ही पलंग पर सोते हुए भी यह अजनबीपन हर रात उनके बीच बढ़ता रहता है। एक ज़ख्म सा है जिसके ऊपर की चमड़ी जुड़ने की हर नई चेष्टा के बाद फिर टूट जाती है।

वह हर रात सोने से पहले यही सोचती है कि कल से मैं ही झुकने की कोशिश करूंगी पर दूसरे दिन एक रुटीन की तरह कोई न कोई ऐसी बात हो ही जाती है जिससे उसके पति का सीधा न रहने वाला चेहरा और भी टेढ़ा हो जाता है।

आखिर कौन सा अभाव है उन्हें ? पति पी० डब्ल्यू० डी० में जूनियर इंजीनियर हैं। चार-पांच बार असिस्टैण्ट इंजीनियर बनने के लिए इण्टरव्यू दे आए हैं पर बुलावा कभी नहीं आया। ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते हैं, वे कुनीन की तरह कड़वे होते जाते हैं। इतना संतोष भी नहीं कि जे० ई० तो हैं ही। आर्थिक तौर पर भी औरों की अपेक्षा अधिक सुरक्षित हैं। उसके मायके रानीखेत में हैं। वहां से भी मां कुछ न कुछ भेजती ही रहती है। अभी पिछले दिनों बासमती चावलों की एक बोरी भिजवाई थी। अच्छी खासी आमदनी है, दो बच्चे हैं, फिर ....

वैसे तो शादी की पहली रात ही उसने अनुभव किया था कि सांवले रंग, मोटी और घनी काली भौहों के नीचे काली आंखों और गोल से चेहरे वाले इस व्यक्ति के साथ एडजस्ट होते हुए ज़रा देर लगेगी। पर वह ज़रा सी देर तो रबड़ के समान खिंचती ही चली

जा रही है। पिछले सात—आठ महीनों से उसने दुबारा नए उत्साह से अपने पति के साथ एडजस्ट होने की जितनी चेष्टा की है, उनके बीच की अदृश्य खाई उतनी ही गहरी नहीं नहीं चौड़ी भी होती गई है।

उसे अपने पति की एक आदत से बड़ी नफ़रत है। वह बच्चों के ऊपर इतना कड़ा नियंत्रण रखते हैं कि उनके घर में रहते आठ साल का राजू और छह साल का संजय सहमे हुए से रहते हैं। कोई भी हरकत करते वक्त बच्चे सतर्क से रहते हैं। उनके घर में रहते कोई भी चीज़ उठाते समय राजू के तो हाथ भी कांपते रहते हैं। लेकिन ये फिर भी इन्हें डांटते रहते हैं और राजू को तो कभी कभार पीट भी देते हैं—बिना किसी भी विशेष कारण के। पहले नहीं पीटा करते थे। एक दिन इनके कोई मित्र आए थे। राजू की तसवीर देखकर कहने लगे—आपके बड़े बेटे की शकल तो अपनी मां से हू-ब-हू मिलती है। वही पतली भवें और आंखें-बिलकुल एक सहमी हुई हिरणी की तरह। उस समय तो ये हंस दिए थे। लेकिन उस घटना के बाद से उसके पति ने राजू को कभी प्यार नहीं किया था। हां छोटे संजय को कभी-कभार प्यार ज़रूर कर लेते हैं। एक बार जब उसके पति ने राजू को बेवजह पीटा तो वह झुंझला उठी थी और प्रतिशोध में संजय को बेकार ही में पीट दिया था। संजय की भवें बाप की तरह मोटी हैं। पूरा दिन उसे अपने किए पर ग्लानि होती रही थी।

इस वातावरण में भीतर ही भीतर बेबसी उसे कचोटती रहती है और वह लाचार हो एक पंख नुचे पक्षी की तरह फड़फड़ा कर रह जाती है।

× × × ×

उनके ही मकान में एक और किरायेदार भी हैं। जिनकी पत्नी रजनी उसे सान्त्वना देती रहती है, हालांकि उसने अपने मुंह से रजनी को कभी कुछ नहीं बताया, पर एक नारी की व्यथा दूसरी

नारी से कैसे छिप सकती है ? प्रतिबिम्ब अलग होने पर भी पीड़ा का दर्पण तो एक ही है।

कुछ दिन पहले इन्हीं किरायेदार का भतीजा आया हुआ था। होगा यही कोई उन्नीस-बीस का। लम्बे छरहरे बदन का, लम्बा चेहरा, लड़कियों की तरह नैन-नक्श (भवें पतली सी बिल्कुल उसके स्वयं जैसी !!) हंसमुख, किसी बात पर नाराज़ नहीं होता था। जिस दिन आया था, उसी दिन शाम को आकर उससे बोला था, "दीदी, ज़रा राजू को भेजना, थोड़ा बाज़ार तक घूम आयेंगे।" उसके अधिकारपूर्ण शब्द सुनकर वह उस से पूछ बैठी, "क्यों रे, मैं तेरी दीदी कैसे लगती हूं। रजनी को तो तू आंटी कहता है। जानता है वह मुझ से पांच-छः साल छोटी होगी।"

वह मुख पर एक भोली सी मुस्कान लाकर बोला,—"देखिये, आप मेरी आंटी की सहेली हैं ना, पर मैं आप को आंटी नहीं कहना चाहता, क्योंकि आगे ही अपनी बहुत आंटियां हैं, इस लिए आपको दीदी कहता हूं, इसका एक फायदा भी तो है ये राजू लोग अपने को अंकल भी तो बोलेंगे।" उसे भीतर ही भीतर बड़ी हंसी आई, पर ऊपर से गम्भीर बनी उसे ताक़ती रही। मायके में उसका छोटा भाई भी इसी तरह, कभी इधर, कभी उधर, कुछ न कुछ करता ही रहता है। सारा घर सर पर उठाये रहता है।

उन्हीं दिनों, एक दिन उसके पति ने राजू को पीटना शुरू ही किया था कि वह अपने कमरे में से दौड़ता हुआ आया और राजू को उसके पति से छुड़ाते हुए बोला.—"जीजा जी, छोड़िए भी, क्या करते हैं ? बच्चे को ऐसे पीटा जाता है ?" उसका चेहरा रक्ताभ हो गया था। वह राजू को हाथ में लपेटता सा बाहर ले गया था। और उस समय उसने एक बार सोचा था कि उसका पति भी अगर वैसा होता या वह ही होता...? और फिर उसे अपनी कल्पना पर हंसी आई थी। कहां वह बीस साल का लड़का और कहां वह खुद उससे नौ-दस साल बड़ी, दो बच्चों की मां।

काफी देर बाद, वह राजू को बहला कर लाया तो उसके पति

जा चुके थे। आते ही एक दम बोला,—"यह जीजा जी आदमी हैं या कसाई, दीदी तुम रहती कैसे हो इन के साथ। तुम्हारी जगह मैं होता तो कब का....................." फिर वह एकदम चौंक कर चुप हो गया था, जैसे किसी दूसरे के क्षेत्र में अतिक्रमण कर गया हो। फिर बुझे-बुझे स्वर में बोला था,—"माफ करना दीदी, कुछ ज्यादा ही बोल गया।" और उसके जाते ही वह फूट-फूट कर रो दी। नुचे हुए पखों पर मरहम लगाने से पीड़ा इसी तरह बहने लगती है।

× × × ×

"जो आदमी, एक शीशे का गिलास टूटने पर अपने बच्चे को पीटे, वह आदमी है या कसाई......," वह ठीक ही कहता था। पति के चेहरे को देखते हुए उसकी आंखों से पानी बह रहा है। वह सोचती रही कि उसका पति किस दृष्टि में उससे श्रेष्ठ है। यदि उसकी जगह वह नौकरी करती होती तो इस व्यक्ति का क्या मूल्य होता? उसका पति यदि जे० ई० के पद से आगे नहीं बढ़ पाता तो इसमें उसका या उसके बच्चों का क्या दोष है? एक मनोवैज्ञानिक ने कहीं लिखा था कि हर व्यक्ति उस स्थान तक तरक्की करता है, जिसके वह काबिल नहीं होता। तो क्या उसका पति......

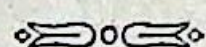
सामाजिक सन्दर्भों में उसने अपने पति को हर व्यक्ति से कटने की चेष्टा करते देखा है। मिलनसारी तो जैसे उनमें है ही नहीं।

नारी-स्वातंत्र्य के बारे में उसने पढ़ा था। पुरुष के साथ सामाजिक-आर्थिक बराबरी के लिए शुरू हुआ आन्दोलन......कहीं पर तो "ब्रा और पैन्टीज" को न पहनने पर आकर रुक गया, और कहीं पर हर चार में से तीन डाक्टर, और हर तीसरा इन्जीनियर—एक औरत ही है। पर अपने इधर तो नारी के लिए वही घर, वही पति, वही समाज, वही जंजाल... ... ...

पति की तरफ से वह करवट बदल कर पीठ के बल छत की

तरफ़ मुंह करके आंखों पर हाथ रख लेती है। सोचते सोचते उसे एक उकताहट सी महसूस होने लगती है।

नींद की झोंक में ही उसके पति का हाथ उसकी छाती के ऊपर आ टिकता है। नाइटी के नीचे के मांस पिण्डों में कोई उत्तेजना नहीं फैलती......उसे इस हाथ के स्पर्श से वितृष्णा होने लगती है और वह उस हाथ के बोझ को छाती से हटाये जाने का इन्तज़ार करने लगती है।



ये फ़ाइलें और ये कतारें

—राज भल्ला

यह कितनी बड़ी सज़ा है कि नहीं जीने का ख्वाहिशमन्द तो जिए, पर जीने की लालसा वाला जी ही न सके। सज़ाएं दोनों ही अपनी अपनी जगह अर्थ रखती हैं, तो भी छोटे नगरों से बड़े नगरों के लोगों को ज्यादा ही इस लपेट में देखा है। कल ही तो बड़े साहब की लाश को दफना के आया हूं।

दिन ढलने के साथ ही एक नई ज़िन्दगी का उपक्रम शुरू हो जाता, शाही बंगले में रोशनियां चमक उठतीं, हज़ारों हसीन नज़ारों से जो घिर जाता, वह आज दिन ढलने के साथ खुद भी तो ढल गया, शायद हमेशा हमेशा के लिए!!

अब रोशनी अन्धेरा छोड़ रही है। लगता है साहब की ज़िन्दगी का अन्धेरा पक्ष शुरू हो गया है। बंगले में पड़ी लाश शायद ज़िन्दगी का शार्टकट ढूंढने वाले की लाश थी, पर कोई कामयाबी न मिली और आज उसे इस शक्ल में पड़ा देख रहा हूं। रात बीती, दिन चढ़ा पर लाश का दावेदार कोई नहीं मिला।

बंगला पुलिस से घिर गया। भीड़ का समुद्र उसे अपने में समोने लगा। कतारों की कतारें उसे देखने को आने लगी हैं और भीड़ में अच्छी खासी खुसर पुसर भी जारी है।

खैर आवश्यक पुलिस-कार्यवाही के बाद लाश उन लोगों को सौंप दी गई जिनसे वह प्रायः घिरा रहता था। लाश और लाश के साथ तमाम अमला फैला, बददुआएं देने वालों का जमघट, कई एक धोखाधड़ियों का बखान करते हुए बेशुमार लोग !!!

साहब के मरने का किसी को दुःख नहीं और न ही डर फाइलों में हुई हेराफेरियों का ही। डर या दुःख का नाटक तो खेलना इसलिए जरूरी हो गया है क्योंकि सभी उसी नाटक के छोटे-मोटे पात्र रहे हैं।

भीड़ में फिर खुसर-पुसर होने लगी है। 'अच्छा हुआ साला... ......।' साला शब्द बार बार कानों में पड़ते ही महसूसने लगा हूं शायद यह सब का साला ही बन कर रहा होगा। उसकी फाइलें कुछ कुछ ऐसा ही तो जाहिर करती हैं। उसने अपने कई एक लोगों के घाव भरने के लिए नगर के कई एक दूसरे लोगों को घाव दिए। फिर इस ज़िन्दगी का हशर क्या हुआ ?

फाइलों और रंगीनियों से घिरा हुआ आलीशान बंगला, पर कलेजा, सौ प्रबन्ध करके भी, धक् धक् करता रहा। वह तो सचमुच आज लाश बन गया, पर इधर चलती फिरती लाशों के हाथ भी तो इतने कमज़ोर पड़ गए हैं कि गरमी का नाम तक नहीं !! कार्य-क्षमता इतनी कम हो चुकी है कि एक की जगह दस हाथ काम कर रहे हैं पर फाइल महीनों आगे नहीं सरकती, न तो फाइल और न ही फाइलों में बन्द लोगों की ज़िन्दगी। इसी में लिपटे मुझे भी तो बीस बरस होने लगे। साहब तो मर गया, पर मुझे क्या जीने की कोई खुशी है ?

नहीं, मैं जी नहीं रहा, मुझे जीना पड़ रहा है। तो क्या यह एक सज़ा नहीं ? ज़रा इन छोटी, मोटी फाइलों से अपने को निकाल कर मैं और साहब अपनी जिन्दगी का सही हिसाब किताब तो करते, फिर जीने का कितना मज़ा आता—पर इतनी फुर्सत कहां ?

इधर उधर के ख्यालों से घिरा हुआ शरण घर पहुंचा तो

अत्यधिक थका हुआ। × × ×

'क्यों—आज कोई खास बात है ?' रामप्यारी ने पास बैठते हुए कहा। क्या जवाब दूं—फाइलों की समस्याएं और...और मेरी समस्याएं। ...कितना अन्तर है !! कैसे दूर हो ?

शरणु, कुछ जीने का मजा नहीं आ रहा—कितनी बार बड़ा साहब इन लफ़्जों को दुहराता था। कितना अन्तर मेरा और उनका, पर दोनों मजबूरी जाहिर करते रहे। अपनी इन मजबूरियों से पीछा छुड़ाने, मैं सड़क पार के पार्क में जा बैठा, पर ख्यालों की भीड़ ने मुझे वहां भी अकेला न बैठने दिया।

ओ, क्या लिखा है भला उस की कब्र पर। लिखा है—"मौत ही जिन्दगी का शार्टकट है बाकी जीना तो लम्बे ही रास्तों से पड़ता है।"

सचमुच कितने पते की बात लिखी है किसी ने। पर हम जो कोल्हू के बैल की तरह चल रहे हैं क्या उन रास्तों पर चल सकेंगे ?

मुझे तो कोई उत्तर समझ में नहीं आ रहा। फाइल और कतार कतार और फाइल बस इन्हीं में लिपटा घर से निकला ही था कि मेरी नजर चाचा रूपे के लहुलुहान पैरों पर जा पड़ी।

'चाचा, क्या हुआ ?' चाचा चुप थे। फिर मैं भी एक लम्बी सांस लेकर उसके उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा। चाचा फिर भी कुछ नहीं बोले। सोचता हूं—बेचारा मुद्दतों से कतार वाली जिन्दगी जी रहा है, कभी राशन के लिए कतार में तो कभी दूध के लिए डेरीफार्म में भटकते देखा है। हो सकता है भीड़भड़ाके में पाओं दब गया हो।

शायद मेरा समाधान गलत था। इतने में चाचा बोल उठा —'शरणु ! अब तुम्हारे जमाने का जीना जी रहा हूं। ये नौजवान कब देख कर चढ़ते हैं बसों पर।' 'अच्छा, तो आप थे बस स्टाप पर ? मैंने समझा होगा कोई।'

'शरणु ! बताओ न, यही है नौजवानों की अक्ल—धक्के देते हैं, और धक्के ही खाते हैं। फाइलों में इन्हीं की पढ़ाई-लिखाई के आंकड़े देते हो न ? किसी का करना धरना तो एक ओर रहा, उल्टा मुझ मरे को मार दिया।' अपनी भड़ास इन शब्दों में निकाल कर चाचा ने एक लम्बी साँस ली।

शायद अब वह अधिक टूटी जिन्दगी और बर्दाशत नहीं कर सकता। कितना मुश्किल है जब उसे इस टूटी हालत में थैला उठाए कभी किसी दुकान के आगे तो कभी किसी के आगे कतारबद्ध खड़ा होना पड़े। बताओ क्या यह एक सजा नहीं ?

'कैसे समझाऊं तुम्हें कि महानगर की जिन्दगी फाइलों से निकलो तो कतारों में और कतारों से निकलो तो फाइलों में ही है। वहां किसे समझ है कि सोचे, देखे और चले। वहां तो सभी दौड़ रहे हैं, गिर रहे हैं और फिर उठ रहे हैं। यह सारी दौड़ स्टैंडर्ड आफ लिविङ्ग के नाम पर है चाचा ! फिर चाहे इस दौड़ में किसी की टांग टूटे या मेरे चाचा की ही।' आखिरी बात कह कर मुझे खुद हंसी आ गई।

कितनी जल्दी जिन्दगी को जीने की कोशिश की जा रही है। कतारों और फाइलों में बन्द जिन्दगी क्या कुछ जी भी सकेगी ? चिन्ता के इन क्षणों में मैं अखबार लेकर खड़ा ही था कि एक आवाज चीरती हुइ मेरे कानों में आ पड़ी।

बचाओ ... ... बचाओ ... ...

तो क्या कहीं एक्सीडेण्ट हो गया ?

ओहो ! जिन्दगी कितनी दुर्घटनापूर्ण होती जा रही है।

खैर......। देखा तो सिविल अस्पताल में खून देने वालों की कतार लगी है। कोई होनहार शहर में अपनी जिन्दगी बनाने आया था। सभी उपाय उसे बचाने के लिए किए जा रहे हैं।

पिछली लड़ाई में 'रक्त-दान दीजिए' जगह जगह लिखा हुआ

था ना। बस इस नशे ने लोगों को वहां इकठ्ठा किया हुआ था। बस उसे रक्त चाहिए—भीड़ में से एक छब्बीस बरस की विधवा युवती निकली, रक्त दिया और उसके बचने की उम्मीद हो गई। या ज्यों कह लो कि अब वह पुनः फाइलें ढोने लायक और कतार में खड़े होने लायक हो जाएगा।

सच ही कुछ करने की ख्वाहिश ने उसे कितना ऊपर चढ़ा दिया कि उसने ऊपर चढ़ते वक्त नीचे की सीढ़ियां गिनना ही नामुनासिब समझा। पर सत्य तो यह है कि इस पुण्य-कार्य को करके भी वह खुद कई दिन कतारों और फाइलों वाली जिन्दगी नहीं जी सकेगा।

अखबार को कमरे में फैंक कर चुप चाप बैठ गया हूं। पर बैठने से तो काम नहीं चलेगा। अच्छा तो चलूं जिन्दगी के दूसरे सिरे को भी तो देखूं।

'देना थैला ज़रा रामप्यारी'—आवाज़ लगाते हुए मैंने कहा। 'खाण्ड का पता करूं ? ओह। इतनी बड़ी कतार, खाण्ड के लिए ? भला कहां से शरू होती है ? शायद साहब के बंगले से……।'

अपनी फाइलों वाली ज़िन्दगी को तरोताज़ा करने के लिए चाय की इच्छा हो रही है। खाण्ड लानी ही पड़ेगी। 'रामप्यारी—चाए मिलेगी ?' जब तक कि कुछ उत्तर मिलता, मैंने थैला उठाया और चला चाए को मीठा करने के इन्तज़ाम में। कतार की लम्बाई देखकर सोच लिया कि खाण्ड आज की चाय के लिए तो नहीं पर कल के लिए जरूर थैले में पड़ जाएगी।

खैर खाण्ड लेकर घर पहुंचा, खाण्ड कुछ कमती दीख रही है— तो थैले में सुराख होगा। देखा तो पता चला सुराख थैले में नहीं, महानगर की जिन्दगी में है। वहीं से सब कुछ रिस निकलता है!! उफ! हद हो गई! कहीं इन दोनों के बगैर चारा नहीं। लगता है ज़िन्दगी के सिक्के की यही दो परतें हैं कतार और फाइल, फाइल और कतार!!

शरणु कब का घर पहुंच चुका था पर गुम सुम हैरान सा। दरअसल साहब के मरने के बाद से ही वह सुखी न रह पा रहा था कहां साहब की विस्तृत ज़िन्दगी और कहां अब फाइलों में उसकी खोज ! साहब के साथ ही तो मैं ने भी इन्हीं फाइलों में अपने को बान्धा था और शेष अमले फैले में भी। शायद यही एक कड़वाहट थी जो कतार में खड़े खड़े भी मुझे चैन नहीं लेने दे रही थी।

चाहे कुछ भी हो शरणु एक उमररसीदा, समझदार आदमी था। तभी तो आसपड़ोस के लड़के, लड़कियाँ आते, कई बातों पर बहस होती। आज ही तो प्रो० नीरा आई और बोली, 'अंकल, तंग आ गई हूं इस प्रोफेसरी से। देखी आपने कालेज के सामने परीक्षा न देने वालों की लाइन ? पता नहीं कल किस किस को प्रोफैसर बनने की सजा मिले ?'

शरणु चुप था। अब तो और भी चुप हो गया। शायद सोच रहा था इस बेचारी को अकेले ही, मेरी तरह, चिन्ता सता रही है ! देखो न, साहब के बच्चे मजे से बैठे हैं किसी को फिक्र नहीं कि जब फायल की बात चलेगी तब.. तब ...... ?

नाहक मैंने अपनी ज़िन्दगी को स्टैन्डर्ड आफ लिविंग ऊंचा करने के नाम पर धब्बेदार बनाया। पर कसूर भी तो मेरा नहीं। इस कतार वाली ज़िन्दगी ने मुझे मौका ही कब दिया कि मैं इस बारे में कुछ सोचता !

परेशानियों से घिरा शरणु कुछ नींद लेना चाहता है पर इतने में किसी ने दरवाज़ा खटखटाया।

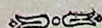
'कौन ? मिस यामिनी और मिसेज़ शर्मा।'

'इस वक्त कैसे ?' 'अंकल आप दोपहर, किस यामिनी को मिलने दफतर गए थे ? असली यामिनी तो कब की मर चुकी है यह तो आपकी ही तरह कभी फाइलें ढोने वाली और कभी घन्टों कतार में खड़े होने वाली यामिनी है। नौकरी की खातिर इसे अपने बास का कुछ ज़्यादा ही ध्यान रखना पड़ता है।'

यामिनी की सच्ची बात सुनकर जमीन पाओं तले न रुकी। सभी मजबूरी से जी रहे हैं। क्या मिस यामिनी और क्या मिसेज़ शर्मा। वह भी तो एक दिन कहने लगी थी—'कुछ नहीं है हम दफ़तरी औरतें!! जीते हुए भी मरी हुइ समझिए अंकल!'

यह सब देखकर शरणु ने कराह भरी। दरअसल अब वह उन सभी यादों को बिसारना चाहता है जिनका जिन्दगी से कोई ताल्लुक नहीं! ये फाइलें और कतारें हमारी सांझी हैं पर दुःख अपने अपने। सभी में घिरा हुआ भी मनुष्य अकेला है। फिर कहते हैं जिन्दगी ऊपर उठ रही है, स्टैण्डर्ड ऊंचा हो रहा है। मुझे तो लग रहा है, जिन्दगी जीवन में रही ही नहीं। ये फाइलें और कतारें तो व्यर्थ का ही रामरोला हैं। फाइल को छोड़ो तो कतार में और कतार को छोड़ो तो फाइल में—कितनी बड़ी सजा है जिन्दगी।

थक गया हूँ। उपरामता सी महसूस कर रहा हूँ। चाहता हूँ कुछ देवदर्शन करू, तीर्थ यात्रा करूं। तो राम प्यारी क्या सलाह है? झट ही दोनों मथुरा चल पड़े। वहां कुछ देर फाइल से तो छुटकारा मिला पर कतार से नहीं। भक्तजनों की कतार—पुजारी जी सब से पूछ रहे हैं कितने वाले दर्शन करोगे! प्रभु दर्शन का टैक्स सुनकर मैं तो हैरान रह गया। बेरंग घर लौटा और फीकी हंसी की गड़गड़ाहट में अपनी फाइल उठाए चल पड़ा हूं साहब के दफ्तर में। इतनी बड़ी जिन्दगी फाइल में बन्द हो कर रह गई है? हद हो गई!



अगले दिन

—हरिकृष्ण कौल

'प्रार्थना' के बाद जब बच्चे अपनी अपनी कक्षाओं में जाने लगे, चौथी श्रेणी के सुले ने उससे कहा—'साले, नीलकंठ का पहाड़ा याद किया है ?'

'नहीं तो। तूने याद किया है ?'

'किया था पर साला याद ही नहीं होता।'

'अब क्या होगा ? वह तो यमदूत है।' मखने का चेहरा पीला पड़ गया।

सुला निश्चिन्तता की हंसी हंसा। फिर उसने चुपके से कोई चीज़ मखने के हाथ में दी—'ले साले, इसे हाथों पर मल ले।'

'क्या है यह ?'

'भेड़ की चर्बी। हाथों पर मल लोगे तो फिर 'केनिंग' से कुछ भी न होगा।'

'बाप मरे जो झूठ बोले !'

'झूठे का बाप मर जाये। देख ले, मैं अपने हाथों पर भी मल रहा हूं।'

दोनों मित्र पहले चार घण्टों और आधी छुट्टी के समय सब की नज़र बचा कर भेडे की चर्बी मलते रहे। आधी छुट्टी के बाद ही नीलकण्ठ का घण्टा था। क्लास में आते ही उसने अपनी पगड़ी उठा कर टूटी अलमारी में रखी। फिर कुर्सी पर बैठकर उस ने कोट और कमीज़ के बटन खोल दिये। फिर अपनी बालों से भरी छाती खुजला कर उसने बच्चों को पहाड़ा सुनाने का आ श दिया। छः लड़कों के बाद ही मखने की बारी आई। तीन के पहाड़े तक तो वह ठीक चला परन्तु उसके आगे अटक गया। नीलकण्ठ कान पकड़ कर उसे पंक्ति से बाहर खींच लाया। मखने ने एक गहरी सांस लेकर अपने हाथों पर दृष्टि डाली जो चर्बी की मालिश के कारण नानवाई की रोटी की तरह चमक रहे थे। मगर नीलकण्ठ ने उसके हाथों पर 'केनिगं' नहीं की। उसने उड़ती नज़र से सारी कक्षा का जायजा लिया। सुला ही उसे सबसे हट्टा कट्टा लड़का दिखाई दिया। उसने उससे कहा—'ओ मोटे, इस गठरी को पीठ पर लाद।'

सुला मास्टर जी की आंखों में धूल झोंकता हुआ क्लास में ही पहाड़े का पारायण कर रहा था। वह पहाड़ा तख्ती के नीचे छिपा कर उठा और मखने की ओर देखकर दबे होठों से मुस्कराया। आदेश का पालन करते हुए उसने मखने को अपनी पीठ पर लादा। नीलकण्ठ ने उसकी निकर नीची की और उसके नर्म नर्म अंगों पर बेंत चलाने लगा। मखना चिल्लाने लगा—'बाप रे! हाय री अम्मा! मर गया......जनाब कल जरूर याद होगा...बाप रे, मर गया। मास्टर जी आप देख लीजिए कल जरूर याद होगा।"

'सच कह रहे हो?' नीलकण्ठ ने पूछा।

'भगवान की कसम। आप देख लीजिए। याद नहीं होगा तो मेरी चमड़ी उधेड़ दीजिए।"

'तो छोड़ दे इसे, मोटे।' नीलकण्ठ ने सुले से कहा और फिर सारी क्लास से पूछा—'कल सभी को सोलह तक पहाड़ा याद होगा?'

'होगा जनाब।' सभी ने ज़ोर से कहा और सुले ने शायद सब से ज्यादा जोर से।

'जिन्होंने आज याद नहीं किया था वे कान पकड़ें।'

छः सात लड़कों ने अपने कान पकड़े और मखने ने शायद सबसे पहले।

चार बजे दोनों मित्र साथ साथ घर की ओर चले। चलते-चलते सुला कुछ कहने लगा कि मखने ने उसे डांटा—'चुप रह साले, देखी तेरी यारी।'

'अरे, हमने खुद थोड़े ही कुछ किया। जैसा मास्टर ने कहा वैसा ही किया।'

'साला, भेड़े की चर्बी का क्या गुणगान करता था?'

'हमें क्या मालूम था तुम्हारे चूतड़ों पर बेंत पड़ेंगे? अगर वहां भी चर्बी मली होती तो उस जगह भी बेंतबाजी बेकार जाती।'

'चुप रह नहीं तो दांत तोड़ दूंगा।'

'बड़ा आया दांत तोड़ने वाला, दालिया पंडित।'

'चुप रह खोजे के बच्चे।'

वह बड़ी सड़क पर आ गये थे। इस समय वहां कान्वेंट की बस भी आकर खड़ी हो गई थी जिससे वहां पढ़ने वाले बच्चे उतर रहे थे। सड़क पर इनकी मम्मियां और दीदियां उन्हें लेने आ गई थीं। बच्चों ने सफेद शर्टें, लाल टाई, लाल जुराबें, काले बूट तथा सब्ज हाफ पैंट या स्कर्ट पहन रखे थे। हाथों में छोटे छोटे 'टिफन बक्स' थे। जाने मखने को क्या हुआ, वह नीली आंखों वाली एक लड़की की ओर एकटक देखने लगा। सुला रेशम जैसे मुलायम बालों तथा दूध जैसी उजली टांगों वाले एक बच्चे की ओर देख रहा था। इस लड़के ने शायद स्कूल में अपना लंच नहीं खाया था, क्योंकि उसकी मां उससे कह रही थी—'अरे तुम्हें अगर कीमा पसंद नहीं तो कहा क्यों नहीं था। मैंने अंडों की 'करी' बना के दी होती या रात के दो एक मछली के पीस बचे थे, वही साथ देती। भला ऐसे भी कोई दिन भर भूखा रहता है........'

सहसा सुले के मन में कोई बात आई और उसने मखने से पूछा—'तुम्हारे यहां भात के साथ क्या पका था ?'

सौंचल का साग ।'

'मतलब तू भी अपने जैसा ही जहन्नुमी है ।'

मखने ने शायद कुछ नहीं सुना । वह जानना चाहता था कि यह नीली आंखों वाली कहा रहती होगी ?

अगले दिन जब सारे लड़के प्रार्थना के लिए सहन में इकट्ठे हुए तो सुले ने ज्यों ही पीछे मुड़ कर देखा बस तभी उसके पांव के नीचे की जमीन खिसक गई । स्कूल के दरवाज़े के बाहर उसका बाप हैडमास्टर से कुछ कह रहा था । सुले को चुपके से खिसक जाने में भलाई दिखाई दी, परन्तु दरवाजे पर चपरासी किसी थानेदार की तरह तन कर खड़ा था । कागज में लिपटी भेड़ की चर्बी जेब में ही पड़ी थी, अभी उसने हाथों पर नहीं मली थी । थोड़ी देर बाद हैडमास्टर अन्दर आया और चपरासी ने दरवाजा बन्द कर दिया ।

'चौथी का सुला अपनी लाइन से बाहर आये ।' आते ही हैडमास्टर ने आदेश दिया ।

सुला टूटे हुए कदमों से बाहर आया और फूंक मार कर अपनी हथेलियां सहलाने लगा ।

'तुम्हें मालूम है इस सुले ने कल शाम घर पर क्या हंगामा किया है ?' हैडमास्टर ने हवा में बैंत नचाते हुए लड़कों से पूछा ।

'नहीं जनाब ।' लड़कों ने जोर से कहा ।

'इसने बर्तन फोड़े हैं, प्याले तोड़े हैं, और अपनी मां का अंगूठा काट खाया है । मालूम है क्यों ?'

'नहीं जनाब ।'

इसने घर वालों से खाने के लिए गरम भात और मसालेदार सालन मांगा ।'

'गरम भात और मसालेदार सालन ! हा...हा...हा !! लड़कों के मुंह से बेसाख्ता हंसी फूटी।

'क्या इसे यह सब मांगना चाहिए था ?'

'नहीं जनाब।'

'शाबाश। अगर घर वाले बासी भात दें तो वही खाना चाहिए। साथ में साग दें तो साग ही खाना चाहिए। कुछ भी न दें तो भी खुश रहना चाहिए। ठीक है न ?'

'हां जनाब।'

हैडमास्टर ने सुले की 'केनिंग' की। उसके हाथों पर दर्जन-दर्जन बैंत मारे। फिर मौलवी साहब से कहा कि वह उसी प्रकार सुले का अंगूठा काट खायें जिस प्रकार इसने अपनी मां का काट खाया है। बैंत तो सुले ने जैसे तैसे बरदाश्त किये पर ज्यों ही मौलवी साहब ने उसके बायें हाथ का अंगूठा दांतों से दबाया उसके मुंह से एक ज़ोरदार चीख निकली और वह धम से नीचे जमीन पर बैठ गया। हैडमास्टर ने लातें मार कर उसे उठाया और वापस अपनी लाइन में भेज दिया।

प्रार्थना शुरू हुई। पाँचवीं जमात के दो लड़के जावेद अहमद और अशोक कुमार सामने आ कर 'दुआ' गाने लगे—

लब पै आई है दुआ बनके तमन्ना मेरी।
जिन्दगी शमा की सूरत हो खुदाया मेरी।

इन दो के पीछे पीछे बाकी लड़के भी जोर जोर से दुआ गाने लगे। सुले को रोते रोते हिचकियां आ गई थीं और वह भी बाकी लड़कों के साथ गा रहा था—

दूर दुनियां का मेरे दम से अंधेरा हो जाय।
हर जगह मेरे चमकने से उजाला हो जाय॥

प्रार्थना के बाद लड़के अपनी अपनी कक्षाओं में चले गये। सुले की अम्बरी सेब जैसी लाल आंखें देखकर मखने को उस पर

दया आई और कल का मन मुटाव अपने आप धुल गया। उसके मन में यह विचार आया कि अगर उसका भी बाप जिन्दा होता तो वह भी कभी कभी उसे मार दिलाने के लिए स्कूल आता ही। ठीक ही है जो वह मर गया है। मां मारती तो है, पर खुद ही मारती है। मार दिलाने के लिए वह स्कूल तो नहीं आ सकती। तभी उसे मास्टर नीलकण्ठ याद आया। यह भी याद आया कि पहाड़ा उसे आज भी याद नहीं है। सुले से भेड़ की चर्बी मांगना ठीक नहीं लगा। और फिर उस पर से उसका विश्वास भी उठ गया था। काफी सोच विचार के बाद उसे अपना ही इलाज बेहतर दिखाई दिया। उसने सात बार महाकाली का नाम लिया और कमीज़ के दामन में गांठ डाली।

आधी छुट्टी के बाद पहला घण्टा नीलकण्ठ का था। उसने यथानियम क्लास में आते ही पगड़ी उतार कर अलमारी में रखी, पांव गुरगाबी से बाहर निकाले और पालथी मार कर कुर्सी पर बैठ गया। कुछ देर के लिए अपना सिर खुजलाने के बाद उसने लड़कों को पहाड़ा सुनाने का आदेश दिया।

अभी पहला लड़का ही पहाड़ा सुना रहा थ कि मखना सहसा उठ खड़ा हुआ।

'कौन सी गाज गिरी रे तुम पर?'

'मास्टर जी, मुझे 'पास' आया।'

'पास का बच्चा! बैठ, मैं तुम्हारा मांस नोचूंगा।'

मखना नीचे बैठ गया। मगर चार पांच मिनट के बाद फिर खड़ा हो गया।

'मास्टर जी मुझे सख्त 'पास' आ गया।'

'मेरे सामने शैतानी नहीं चलेगी। पास के बदले में तुम्हारी शैतानी ही निकाल दूंगा।'

'मास्टर जी, भगवान कसम सच कह रहा हूं। मुझे 'बड़ा पास' आया है।'

नीलकण्ठ ने मखना की ग्रोर तनिक गौर से देखा। मखना की ग्रांख में ग्रांसू ग्रा गये थे। नीलकण्ठ को उसके सच बोलने का विश्वास हो गया ग्रौर उसने उसे क्लास से उठ जाने की इजाजत दे दी।

पाखाने में बैठा मखना सोचने लगा कि सचमुच कमीज के दामन में गांठ डालने में कोई रहस्य है। नहीं तो उसे ग्रचानक 'बड़ा पास' क्यों ग्राता? वह सुबह ही घर से पेट साफ कर के चला था। वास्तव में महाकाली ही ग्रसहायों की सहायता करने वाली है। जब तक वह वापिस क्लास में जायेगा, नीलकण्ठ का घंटा समाप्त हो चुका होगा।

चार बजे छुट्टी की घटी बजी ग्रौर मखना ग्रौर सुला घर की ग्रोर चल पड़े। बड़ी सड़क पर पहुंच कर जब सुला नाक की सीध में चलने लगा तो मखना ने उसे रोका—'ठहर, कानवेन्ट की बस का इन्तजार करेंगे।'

'बला मार यार, बाद में मार पड़ती है।'

इस बात का कोई ग्रर्थ मखने की समझ में नहीं ग्राया, वह चुप रहा। सुले ने उसकी बाँह थाम कर उसे घसीटा परन्तु उसके कदम ही ना उठे। ग्राखिर सुला ग्रकेला चलने लगा। कुछ पग चल कर उसकी दृष्टि जुग्रा खेलते चन्द लोगों पर पड़ी ग्रौर वह उनका तमाशा देखने लगा।

दो-तीन मिनट के बाद कानवेन्ट की बस ग्रा गई। निकर, स्कर्ट, जुराबें, बूट ग्रौर टाई पहने बच्चे बस में से उतरे। पांच-छः बच्चों के बाद वह नीली ग्रांखों वाली लड़की भी उतरी। बस में से उतर कर उसने लंच बाक्स ग्रौर किताबों की ग्रटेची मां के हवाले की ग्रौर ग्रपनी स्कर्ट का कमरबन्द तनिक कसा। मखना को लगा जैसे हैडमास्टर ने उसे स्कूल के ग्रांगन के चारों ग्रोर दौड़ाया है। उसका दिल जोर से धड़कता है ग्रौर सांस तेज तेज चल रही है। उसने ध्यान से देखा वह हलवाई की गली से होकर ग्रपनी मां के साथ चली गई।

अगले दिन स्कूल आधी छुट्टी तक ठीक तरह चला, आधी छुट्टी के समय शोर मचा कि वितस्ता में नहाते नहाते दो लड़के डूब गये। काफी देर तक घंटी न वजी और जब बजी तो मास्टरों ने लड़कों से सहन में ही जमा होने को कहा। फ़िर हैडमास्टर नीचे आया और लड़कों के आगे भाषण देने लगा—

'लड़कों को चाहिए कि वो दरिया पर नहाया न करें क्योंकि आजकल वितस्ता में रहने वाला मगरमच्छ पगला गया है। मगरमच्छ एक जानवर होता है जिसकी शक्ल छिपकली से मिलती जुलती है। किन्तु मगरमच्छ बहुत बड़ा होता है। ज्योंही कोई लड़का नहाने के लिए वितस्ता में उतरेगा मगरमच्छ उसकी टांग पकड़ कर उसे पानी के भीतर बहुत नीचे खींचकर ले जायेगा। मगरमच्छ को अंग्रेजी में 'क्रोकोडाइल' कहते हैं। 'क्रोकोडाइल टियर्स' एक मुहावरा है जिसका अर्थ पांचवीं जमात के लड़कों को याद रखना चाहिए.........'

इसी बीच सैकेन्ड मास्टर मोहर तथा पैड लेकर नीचे आ गया था। वह एक एक करके लड़कों की जांघों पर स्कूल की मोहर लगा रहा था। हैडमास्टर साहब का भाषण जारी था।

'तुम में से प्रत्येक लड़के की रान पर स्कूल की मोहर लगाई जायेगी। हम हर दिन ये मोहर देखा करेंगे। जिसकी मोहर धुल-पुंछ गई होगी उसे बिच्छू घास पर लिटाया जायेगा।'

जब सैकेण्ड मास्टर सब लड़कों की जांघों पर मोहर लगा चुके तो छुट्टी कर दी गई।

घर की ओर चलते-चलते मखने ने सुले से कहा—'हम कहेंगे कि हमने नल पर नहाया है। सचाई इनका बाप भी नहीं जान पायेगा।'

'साले, ये क्या गधे हैं? ये नहीं जानते कि नलों में पानी ही नहीं होता है?'

मखने ने निकर तनिक ऊंची की और सुले से कहा—'देख, इस

रान पर ये गुलाम दाग क्या सजता है ?'

'कसाई की दुकान पर ऐसी ही बकरे की मोहर लगी रानें लटकती रहती हैं।' सुले ने कहा।

बड़ी सड़क पर आकर मखना सहसा रुक गया और सुले से बोल उठा—

'आज तो नीलकन्ठ नाम वाले मगरमच्छ के घंटे में भगवान ने ही बचाया।'

'अरे हां, सच ही तो।'

'कल तुम से पहाड़ा सुना था ?'

'कहां, मैं भी बच गया। अल्लाह का शुक्र।'

'बाप मरे जो झूठ बोले ?'

'झूठे का बाप दोजख में जाये।'

'कैसे ?'

'मुझसे अपना सिर चांपने को कहा।'

कुछ क्षण दोनों चुप रहे और तब मखना बोल उठा .....

'आज अभी तक़ वह बस नहीं आई ?'

'कैसे आती, आज हमारा स्कूल जो जल्दी बन्द हुआ। चलो चलें।'

'नहीं, थोड़ी देर रुकेंगे।'

'नही यार चलेंगे। कल यह मगरमच्छ का बच्चा जरूर पहाड़ा सुनेगा।'

मखने ने कमीज के दामन की ओर देखते हुए निश्चिंतता से कहा—'छोड़ो यार, कल की कल देखी जायेगी।'

कल, और कल, और फिर कल ! काल-चक्र कुछ और घूमा। प्रार्थना से पहले सफाई देखने के समय फार्म-मास्टर लड़कों की जांघों पर लगाई गई मोहर के निशान देखने लगा।

अधिकतर लड़कों के ये निशान मिट गये थे। कुछ के धुंधले पड़ गये थे। सुले और मखने की जांघों पर ही मोहर पूरी तरह बरकरार थी, यद्यपि शरीर के और हिस्सों की ही भांति इन निशानों पर मैल की परत जमी थी। फार्म-मास्टर समझ गया कि केवल इन दो लड़कों ने ही हैडमास्टर के आदेश का पालन किया है और इस अन्तराल में एक बार भी नहाया नहीं है। वह उन पर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने छुट्टी देकर उन्हें अपने घर भेज दिया जहां मकान की मरम्मत के लिए कारीगर लगे थे।

सुला और मखना बड़े उत्साह से फार्म-मास्टर के घर पर कारीगरों का हाथ बटाने लगे। ईंटें और लकड़ी के तखते ढोने के अलावा उनका काम कारीगरों के लिए हुक्के में पानी भर कर लाना तथा चिलम सुलगाना था। काम करते करते मखने की कमीज़ फट गई। सुले ने तनिक चतुराई बरती थी। उसने कमीज़ पहले ही उतार रखी थी और केवल निकर पहने काम कर रहा था।

चार बजे किताबों के बस्ते उठाकर दोनों घर की ओर चल पड़े। बड़ी सड़क पर आकर मखने के कदम अपने आप रुक गये। सुला मुस्कराया। कुछ देर बाद ही कान्वेंट के बच्चों की बस आई बच्चों ने आज गर्म वर्दी पहन रखी थी—काले जूते, लाल ऊनी जुराब, वर्सटेड की ग्रे रंग की पैंट, ग्रे रंग का ही ऊनी स्वेटर, सफेद शर्ट, लाल टाई तथा ब्लेज़र का हरे रंग का कोट। मखने ने काफी तलाश किया किन्तु वह नीली आंखों वाली उसे कहीं नहीं दीखी।

'चलो चलें, देर हो गई। ठण्ड भी आज काफी है।' सुले की बात सुनकर जैसे मखने का कोई स्वप्न टूट गया। उसे भी ठंड अनुभव हुई और दोनों घर की ओर चल पड़े।

महीने भर बाद ही स्कूल सर्दियों के लिए बन्द हो गया। छुट्टियां बीतने पर जब स्कूल पुनः खुला तो सड़कों पर, छत्तों-दीवारों पर तथा गलियों और आंगनों में बर्फ मौजूद थी। घण्टी बजने तक लड़के स्कूल के सहन में 'बर्फ की जंग' खेलते रहे। सुले और मखने ने बर्फ के कब्र खोद कर अनेक लड़कों को उनमें दफ़न किया। अनेक लड़कों के कपड़ों के अन्दर बर्फ डाली। बर्फ से हैडमास्टर, मास्टर

नीलकण्ठ और मौलवी साहब के पुतले बना डाले। यह देखकर बहुत से लड़कों ने तालियां बजा दीं और सुले और मखने को पहली बार स्कूल में अपने महत्त्व का अनुभव हुआ। पांचवीं जमात के जावेद अहमद और अशोक कुमार को बर्फ पर घसीट कर उन्हें एक अजीब किस्म की खुशी हुई। उनकी यह खुशी चौथे घण्टे तक कायम रही। पहले दो घंटों में कोई भी मास्टर उन्हें पढ़ाने के लिए नहीं आया। तीसरा घटा मौलवी साहब का था। वह हिन्दू लड़कों से शिवरात्रि के अखरोट मांग कर इकट्ठे करने लगे और छुट्टियों का काम देखना उन्हें याद ही नहीं रहा। लेकिन चौथे घंटे में सैकेंड मास्टर ने कक्षा में दाखिल होते ही लड़कों से छुट्टियों का काम दिखाने को कहा। बहुत से लड़कों के चेहरों पर मुर्दनी छा गई। मखने ने ज़ल्दी से कमीज के दामन में गांठ लगा दी। सुले की जेब में इस समय शायद भेड़े की चर्बी नहीं थी। वह दीन विनीत दृष्टि से सैकेंड मास्टर की ओर देखने लगा।

सैकैंड मास्टर ने सुले, मखने तथा उन सभी लड़कों को खड़े होने का आदेश दिया जिन्होंने छुट्टियों का काम नहीं किया था। फिर उसने बुखारी की नालियों को खड़का कर कालिख इकट्ठी की और इन लड़कों के चेहरों पर पोत दी। मानीटर को आदेश दिया कि वह इन्हें सभी क्लासों में ले जा कर घुमा लाये। यह आदेश सुनकर मखने की जान में जान आई। शुक्र है भगवान का, मार नहीं पड़ी। कमीज़ की गांठ पर उसकी आस्था दृढ़ हो गई। उसने सीढ़ियां उतरते समय मखने से कहा—'साले, शिवरात्री के दिन मैं ने अपने चचेरे भाई के साथ सिनेमा देखा। सच फिलम में तेरे जैसा ही एक काला देव था।'

'मेरे जैसा या तेरे जैसा ?'

दोनों हंसने लगे।

मानीटर उन्हें सबसे पहले पांचवीं श्रेणी में ले गया। उन्हें देखते ही मास्टर साहब और लड़कों की बेसाख्ता हंसी फूट पड़ी। वे भी जवाब में बेवकूफों की तरह मुस्कराये। इसके बाद उन्हें

तीसरी श्रेणी में ले जाया गया। वहां इस समय मास्टर नीलकण्ठ पढ़ा रहा था। उसने उनके कान खींचे। एक दो बच्चे हंसने लगे, मगर सुले ने उनकी ओर ऐसी खौफनाक दृष्टि से देखा कि उनकी हंसी उनके होंठों के बीच ही खो गई। तीसरी के बाद उन्हें दूसरी जमात में ले जाया गया। वहां इस समय मौलवी साहब थे। उन्हों ने उन्हें थप्पड़ मारे और गालियां दीं। मखने की पीठ पर धौल जमा कर उन्होंने उससे कहा—'रांड के पुत्र, अगर कल शिवरात्रि के अखरोट साथ नहीं होंगे तो चमड़ी उधेड़ दूंगा।'

पहली जमात में मखने ने चुपके से अपने आगे खड़े काले देव की चिकोटी काटी। उसके मुंह से चीख निकली और क्लास के मास्टर ने उसे ही दो तीन थप्पड़ रसीद किए। सुले ने पहली पंक्ति में बैठे बच्चों की दवातें अपने पांव से उलट दीं। पर वे बेचारे भय के कारण चुप रहे। अपनी श्रेणी में वापस आने पर सैकेंड मास्टर ने उन्हें मुर्गा बना दिया और ताकीद की कि कल वे छुट्टियों का काम जरूर करके लायें।

कल, और कल, और फिर कल। पांच वर्ष ऐसे ही बीत गए। स्कूल का नाम गवर्नमेंट प्राइमरी स्कूल से बदल कर गवर्नमेंट लोअर मिडिल स्कूल हो गया। यद्यपि कक्षाएं वही पांच रहीं। सुला और मखना भी वैसे ही चौथी कक्षा के छात्र बने रहे।

कार्तिक की धूप में एक अजीब मस्ती थी। सुला अपने नाखूनों से मौलवी साहब के कंधे और पीठ खुजला रहा था। मखना अंगुलियों से दबा कर उस्ताद की टांगों पर निकल आई फुंसियों से पीप निकाल रहा था। मौलवी साहब की अधमुंदी आंखों में नशा सा छाया था। दरवाजे पर मानीटर इस हुकुम से खड़ा था कि यदि हैडमास्टर इस ओर निकल आये तो वह मौलवी साहब को तुरन्त सूचित करे। कक्षा के बाकी लड़के स्लेटों पर जीरो-क्रास खेल रहे थे।

मौलवी साहब का यह घण्टा आखिरी घण्टा था और इसके

बाद छुट्टी हुई। मखने ने स्कूल के निकट वाले दुकानदार से सिगरेट खरीदी। वह और सुला बारी बारी से सिगरेट के कश लेने लगे।

'जरा तेज चल। घर पर बस्ते छोड़ कर गोबर वाले मैदान में खेलने जायेंगे।'

'यह सिगरेट तो खत्म कर लेने दो। सड़क पर कोई देख लेगा।'

'यह तूने झूठ बका साले अगर तेरा बाप जिन्दा होता तो तू उससे भी हुक्का भरवाता। हरामी, तेरी वह अभी नहीं आई होगी, इसीलिए कहता है।'

मखना मुस्कराया।

सिगरेट पीने और दुकानदार से बतियाने के बाद, वे सड़क पर आये तो कान्वेंट की बस बच्चों को उतार कर जा चुकी थी। मखने ने सुले से दो पैसे की भुनी मोठ खरीदने को कहा। सुले ने मोठ खरीदी और दोनों खाने लगे।

'यह लो, आ गई।' सुले की बात सुनकर मखने के मोठ चबाते दाँतों की गति सहसा रुक गई। हृदय की धड़कन तेज हो गई और वह टकटकी बांध कर उसकी ओर देखने लगा।

हलवाई की गली के पास पहुँच कर वह साइकल से उतर गई। पीछे केरियर पर किताबों की अटैची थी। दाहिने हाथ में एक हाकी थी। पांव में कैनवास के सफेद जूते थे। जुराबें भी सफेद रंग की थीं। सफेद स्कर्ट घुटनों से कुछ ऊपर ही था। सफेद शर्ट के ऊपर उसने नायलन का एक लाल कार्डीगन पहना हुआ था। तराशे गये बाल कंधों के ऊपर झूल रहे थे।

'अरे, यह कितनी बड़ी हो गई है और कितनी बदल गयी है।' सुले को सचमुच आश्चर्य हो रहा था।

'बस सिर्फ आंखें ही वैसी हैं। नीली नीली।' सुले ने आह भरा।

'तब वह कितनी छोटी थी ?'

'कितनी छोटी ? हमारे बराबर ही तो थी। मगर कहते हैं इस साल इसने मैट्रिक देना है।'

'मां के मरने की कसम खाओ।' सुले को विश्वास ही नहीं हो रहा था।

'मां मरे जो झूठ बोलूं।'

'इसे कहते हैं तकदीर।'

'यह भी सुना है कि आजकल स्कूल में हाकी टीम की कैप्टन है।'

सहसा सुले को कोई बात याद आई। उसने मखने से पूछा— 'याद है न पिछले महीने फार्म मास्टर ने हाकी-बाल खरीदने के लिए सभी लड़कों से चार चार आने लिए थे। उन पैसों का क्या हुआ ?'

मखना चिढ़ गया। यह साला कहां से कहां पहुँचा। बात कुछ है और यह कुछ और ही बकने लगा है।

बारह वर्ष के बाद स्कूल का नाम फिर बदला—नेहरू मेमोरियल गवर्नमेंट लोअर मिडिल स्कूल।

सुले ने मखने से पूछा—'यह नेहरू मेमोरियल क्या होता है ?'

'नेहरू जी मर गये ? इसीलिए उनके नाम पर स्कूल का नाम रखा गया।'

'तेरा बाप भी मर गया है। उसके नाम पर स्कूल का नाम क्यों नहीं रखा गया ?'

'जब तेरा बाप मर जायेगा, तब उसके नाम पर स्कूल का नाम रखेंगे।'

'बाप की गाली देता है, साला।' सुला उत्तेजित हो गया।

'बाप की गाली दूंगा, मां की गाली दूंगा, बहन की गाली दूंगा। बोल, तू क्या करेगा ?'

वह क्या करेगा, सुला यह बताने वाला ही था कि घण्टी बजी

ग्रौर दोनों क्लास में बस्ते रख कर प्रार्थना के लिए नीचे सहन में ग्रा गए ।

प्रार्थना के बाद हैडमास्टर ने ऐलान किया कि मौलवी साहब ग्राज रिटायर हो जायेंगे ग्रौर कल से वह स्कूल नहीं ग्रायेंगे । फिर उसने मौलवी साहब की शराफत ग्रौर काबलियत के बारे में बहुत कुछ कहा ग्रौर ग्रन्त में उनसे निवेदन किया कि वह ग्रपने कीमती ख्यालात लड़कों के ग्रागे रख कर उन्हें नसीहत करें । मौलवी साहब लड़कों के सामने ग्राकर बोलने लगे । मगर दो तीन वाक्य बोलने के बाद ही उनका गला रुंध गया । ग्रांखों में ग्रांसू ग्रा गये । शेरवानी की जेब से रुमाल निकाल कर उन्होंने ग्रांखें पोंछीं फिर जोर से 'शूं' करके इसी रुमाल से ग्रपनी नाक साफ की ग्रौर तह बदल कर रुमाल वापस जेब में रख ली । कुछ क्षण वैसे ही खड़ा रहने के बाद वह वापस ग्राकर ग्रपनी कुर्सी पर बैठ गये ।

क्लास में जाने के लिए जीना चढ़ते समय मखने ने सुले से पूछा—'यह मौलवी का बच्चा रोने क्यों लगा ?'

'नहीं रोता ? बेचारे की नौकरी नहीं रही । ग्रब इसे ग्रखरोट कौन देगा ?'

'मेरे ख़्याल में तौबा कर रहा था, पछता रहा था ।'

'किस बात पर ?'

'लड़कों को जो बुरी तरह मारता था ।'

'यह भी हो सकता है । मैं क्या जानूं ।'

'चलो ग्रच्छा ही हुग्रा । भगवान ने इसके जुल्म से नजात दी ।'

'ग्ररे, इसकी जगह जो ग्रायेगा वह क्या लिहाज करेगा । सभी ससुरे एक जैसे होते हैं ।'

मौलवी साहब रिटायर हो गये ग्रौर ग्रगले दिन हैडमास्टर न उनका घंटा खुद लिया । क्लास में घुसते ही जैसे उसकी नजर सुले पर पड़ी उन्हें कोई बात याद ग्राई ।

'ग्रबे तेरा क्या नाम है ?'

'सुला जनाब ।'

'सुले, तू जरा हमारे घर जा। मालूम है हम कहां रहते हैं ?'

'हां जनाब।'

'शाबाश। हमारा नौकर कल अपने गांव चला गया। आज तू ही हमारी गाय को किसी मैदान में चरने के लिए ले जा।'

सुला बड़ी फुर्ती से उठ खड़ा हुआ—'जनाब, किताबें यहीं रखूं या साथ ले जाऊं ?'

'साथ ले जा। शाम को वहीं से अपने घर चले जाना। मगर तेरे साथ एक और लड़का होना चाहिए था।'

'जनाब, मखने को साथ ले जाऊं ?'

'मखना कौन है ?'

'जनाब मैं हूं।' मखना खड़ा होकर मुस्कराने लगा।

'ठीक है। दोनों अभी चले जाओ।'

मखने और सुले ने बस्ते उठाये और स्कूल से बाहर आये। पहले वे हैडमास्टर के घर गये। वहां से गाय खोल कर दूर बस्ती के बाहर एक मैदान में ले गये। गाय चरने लगी और वे जमीन पर रेखायें खींच कर ठीकरे से 'स्टापू' खेलने लगे।

'यार यह हैडमास्टरनी कितनी मोटी है ?' मखने ने सुले से पूछा।

'नहीं होगी मोटी ? घर में गाय जो बंधी है। मटका भर दूध रोज़ पीती होगी ?'

'कहती थी कि नौकर चार दिन के बाद गांव से लौटेगा। हमें और क्या चाहिए ? ये चार दिन मजे में गुजरेंगे।'

'और फिर अगर इमतिहान में गाय पर 'कम्पोजिशन' पूछा गया तो समझ लो दस में से दस नम्बर मिलेंगे।'

'हां यार देख। गाय के सचमुच दो कान, दो आंखें, चार टांगें और एक दुम होती है।'

'कम्पोजिशन' में यही लिखना होता है। गाय के दो कान,

दो आंखें, चार टांगें और एक दुम होती है। गाय जुगाली करती है............'

'यह जुगाली क्या होती है ?' मखने ने पूछा।

'गाय गोबर करती है न ? गोबर को ही उर्दू में जुगाली कहते होंगे।' सुले ने अपने दिमाग पर जोर डालकर जवाब दिया।

'छोड़ो यार। अगर हैडमास्टर खुश रहा तो खुद ही पास करेगा। कम्पोजिशन लिखना आये या न आये।' मखने ने कहा।

'कल मैं कंचे साथ लाऊंगा। इस ठीकरे के खेल में कोई मज़ा नहीं है।'

'ओहो ! फिर तो लुत्फ रहेगा।' मखना उछला,—'कल मेरे कंचे का निशाना देख लेना।'

चौथे दिन कंचे खेलते हुए मखने ने आह भरी और सुले से कहा—'हैडमास्टरनी कह रही थी कि आज शाम उनका नौकर गांव से लौट आयेगा।'

'मतलब यह कि कल हमें फिर स्कूल जाना होगा।' सुला भी उदास हो गया।

'और नहीं तो क्या ?'

'चलो कल भी यहीं आकर खेलेंगे। घर में कहेंगे कि कल भी हैडमास्टर की गाय चराने के लिए ले जानी है।'

'बाप मरे तेरा, जिन्दगी में पहली बार तूने अकल की बात की।' मखने के चेहरे पर खुशी फिर लौट आई।—'ले सम्भाल मेरे कंचे की टक्कर—तीन पैर की दूरी से।'

कल, और कल, और फिर कल। काल-चक्र फिर घूमा और पांच वर्ष बीत गये

आज नवम्बर की चौदह तारीख अर्थात् जवाहरलाल नेहरू का जन्म दिन अर्थात् बाल दिवस था। नेहरू मेमोरियल गवर्नमेंट लोअर मिडिल स्कूल के बच्चों को मास्टर साहबान स्टेडियम ले गये। स्टेडियम का मुख्य द्वार बंदनवारों से सजा था। बाहर

बहुत सी कारें और जीपें खड़ी थीं। सड़क के दोनों ओर चूने की लकीरें डाली गई थीं। प्रैस की हुई वर्दी पहने और कलफ लगी पगड़ियाँ बांधे पुलिस के सिपाही और अफसर इधर-उधर फिर रहे थे।

नेहरू मेमोरियल गवर्नमेंट लोअर मिडिल स्कूल के लड़कों को मुख्य द्वार से भीतर नहीं जाने दिया गया। उनके लिए पिछवाड़े के एक दरवाजे से अन्दर जाने की व्यवस्था थी। अन्दर का दृश्य देख कर सुले और मखने के होश ही उड़ गये। चारों ओर लाल, पीले, हरे और गुलाबी रंग के झंडे लहरा रहे थे। पैवेलियन में कीमती सूट पहने पुरुष और रंग-बिरंग साड़ियों, शिलवारों में सजी स्त्रियां कुर्सियों पर बैठी थीं। सामने किस्म-किस्म की खूबसूरत वर्दियां पहने बच्चे खड़े थे। एक ओर गोटा-किनारी वाली पोशाक पहने बैंड वाले खड़े थे, जिनके ड्रम, साइड ड्रम और बिगुल धूप में चमक रहे थे।

सुले और मखने के स्कूल के लड़कों को दूर एक कोने में बिठाया गया। दो एक बार चोरी छिपे आगे आने की कोशिश करने पर सैकेंड मास्टर ने हाथ की छड़ी चला कर उन्हें फिर पीछे धकल दिया। मखना बार बार तमाशा देखने के लिए घुटनों पर खड़ा हो जाता था। सुला एक अन्य लड़के के साथ गिट्टे खेलने में मस्त था।

सहसा पैवेलियन में बैठे लोग खड़े हो गये। किसी ने लाउडस्पीकर पर कुछ कहा और वर्दी पहने पंक्तिबद्ध लड़के 'सावधान' में आ गये। उजले कपड़े पहने कोई बड़ा आदमी तशरीफ ले आया था। प्रत्येक को हाथ जोड़ता और मुस्कराता हुआ वह आकर सबसे अगले सोफे पर बैठ गया।

सुले ने मखने की ओर एक छोटा गिट्टा फेंका।

'यह किस साले का बाप मर गया?' मखने ने क्रुद्ध होकर पूछा।

'किसी का नहीं ? गिट्टी मैंने मारी।' सुले ने कहा—'बता दे यह कौन आया ?'

'होगा कोई। मैं क्या जानूँ ?'

'क्या यही नाशपातियां बांटेगा ?'

'तुझसे किसने कहा है कि नाशपातियां बांटी जायेंगी ?'

'सुबह नीलकण्ठ कह रहा था कि स्टेडियम में हर एक को दो दो नाशपातियां मिलेंगी।'

'बाप के मरने की कस्म खाओ।'

'बाप मरे जो झूठ बोलूं।'

उजले कपड़े पहने बड़े आदमी ने मंच पर आकर झंडा लहराया। सभी खड़े हो गये बैंड ने सलामी दी। फिर सब लोग अपनी अपनी जगह बैठ गये। वह आदमी भाषण देने लगा।

'क्या कह रहा है ?' मखने ने सुले से पूछा।

'किस साले की समझ में आ रहा है।'

भाषण समाप्त करके वह आदमी फिर अपनी जगह पर आ कर बैठ गया। लोगों ने तालियां बजायीं। उनकी देखा देखी सुले और मखने ने भी जोर जोर से तालियां बजायीं। फिर एक छोटी बच्ची मंच पर आकर गाना गाने लगी। लोगों और उनकी देखा देखी सुले और मखने ने फिर तालियां बजायीं। उसके बाद पांच छः लड़के और मंच पर आये। उनके लिए भी तालियां बजीं।

'यार, तालियां बजाते बजाते थक गए।' सुले ने मखने से कहा।

'साले तू ज्यादा ही थकता है।' मखने ने उसे डांट दिया—'यह लोग भाषण करते नहीं थके और तू तालियां बजाते थक गया है। वाह रे वाह।'

आठ दस लड़कियों ने 'रोफ' नामक लोक नृत्य पेश किया। फिर वर्दी पहने लड़कों की 'ड्रिल' हुई। अन्त में उजले कपड़े पहने

वह आदमी एक बार फिर मंच पर आ गया और पुरस्कार बांटने लगा। जिसको पुरस्कार मिलता उसके लिए तालियां बजतीं।

'रे मखना, नाशपातियां कब बांटेंगें? सुले ने पूछा—'मैं क्या जानूं? शायद न दें।' मखने ने कहा।

'कैसे नहीं देंगे? उन्हें इनाम देते नहीं मरे तो क्या हमें नाशपातियां देने में मरेंगे?'

'बस हर समय खाने की तरफ ध्यान रहता है। वह देखो एक और लड़की को इनाम मिला है। ताली बजाओ।'

'यह लो। मेरी तरफ से देर नहीं। मैं उसके कुर्बान जाऊंगा।' सुला जोर जोर से ताली बजाने लगा।

ग्यारह बजे सारा तमाशा खत्म हुआ। सुला और मखना बाहर निकल कर स्टेडियम के बाहर वाले गेट के पास खड़े हो गये। नाशपाती खाते हुए दोनों स्टेडियम से बाहर निकलने वाली मोटर कारों और जीपों को गिन रहे थे।

'...........'

'...........'

'सैंतालीस।'

'अड़तालीस।'

उनचास।'

'पचास।'

'इक्यावन।'

'बावन।'

'यार, लानत भेजो। कहां तक गिनोगे? क्या होगा इससे?'

'क्या शहर में इतनी सारी कारें हैं?'

'इतनी ही नहीं, इससे बीस गुना।'

'अच्छा बाप के मरने की कसम खाओ।'

'बाप मरे जो झूठ बोलूं। खैर, बला मारो। तू कहता था दो-दो नाशपातियां मिलेंगी। इन्होंने तो एक एक ही दीं।'

'मैं क्या जानूं ? हो सकता है बाकी नाशपातियां मास्टर साहबान के घर पहुंच गयी हों।'

'अरे, देखा उस कार में कौन था ?' मखने के मुंह से सहसा एक चीख सी निकल गयी। 'नहीं तो ! कौन था ?'

'अरे वही नीली आंखों वाली। शायद कार में अपनी बच्ची को लेकर यहां आई थी।'

'खसम भी साथ था ?' सुले ने पूछा।

'हां।'

'वही रेशम जैसे मुलायम बालों और दूध जैसी टांगों वाला ?'

'हां वही।'

'यार, ये कितने बड़े हो गये हैं ?'

'नहीं होते बड़े ?'

'बच्चे भी हो गये हैं ?'

'नहीं होते ? तब से आज तक बीस-पच्चीस साल गुजर गये हैं।'

'बीस-पच्चीस साल ?'

'और नहीं तो क्या। एक जमाना बीत गया है।'

'अच्छा ?'

'हां, तब नेहरू जी राज करते थे। आज उनकी बेटी राज कर रही है।'

'सच कह रहे हो ?'

'झूठे का बाप मर जाए।'

'हम बड़े क्यों नहीं हुए ?'

'मैं क्या जानूं ? वैसे सुना है बेवकूफों की उम्र नहीं बढ़ती।'

'फिर तो 'दलिद्दरों' की भी नहीं बढ़ती होगी ? क्यों ?'

'मैं क्या जानूं ?'

'कल स्कूल जाना होगा ?' मखने ने कुछ क्षण बाद सुले से फिर पूछा।

'कैसे नहीं जाना होगा ? एक तो आज छुट्टी मिली, तुम अब कल के लिए भी चाहते हो।'

'मैंने सोचा शायद मिले।'

'फिर दो दो नाशपातियां ही मिलतीं।'

'मतलब यह कि स्कूल जाना ही होगा।' मखने ने आह भरी।

कल यानि अगले दिन 'प्रार्थना' के बाद जब बच्चे अपनी अपनी कक्षाओं में जाने लगे, चौथी श्रेणी के सुले ने मखने से कहा—'साले, नीलकण्ठ का पहाड़ा याद किया है ?'

'नहीं तो। तू ने याद किया है ?'

'किया था पर साला याद ही नहीं होता।'

'अब क्या होगा ? वह तो यमदूत है।' मखने का चेहरा नीला पड़ गया।

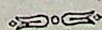
सुला निश्चिंतता की हंसी हंसा। फिर उसने चुपके से कोई चीज़ मखने के हाथ में दे दी—'ले साले, इसे हाथों पर मल ले।'

'क्या है यह ?'

'भेड़े की चर्बी। हाथों पर मल लोगे तो फिर 'कैनिंग' से कुछ भी नहीं होगा।'

'बाप मरे जो झूठ बोले !'

'झूठे का बाप मर जाये। देख ले, मैं अपने हाथों पर भी मल रहा हूं।'



दुहरी टूटन

— डॉ० मुहम्मद अयूब खां 'प्रेमी'

आज अभी-अभी मुझे ऐसा लगा जसे मैं एक सुलगती डाल पर बैठा हुआ एक पंछी हूं लेकिन फिर भी किसी प्रकार की घुटन या टूटन महसूस नहीं हो रही। शायद दर्द गहराई में उतरकर किसी ज्योति को खोजने के लिए कहीं दूर चला गया है और इस समय मेरे अस्तित्व को अर्थहीन बनाकर पीछे छोड़ गया है। सामने वही भीगा हुआ पत्र पड़ा हुआ है जिसके अर्थ को पन्द्रह-बीस बार निचोड़ने के बावजूद फिर मरोडने लगता हूं। दिमाग में अक्षर कील की तरह चुभने लगते हैं और फिर चेतना जाग जाती है। उसने लिखा था—"जीवन की संध्या में धुंधलके के बावजूद भी आज मैं अपने प्रेम की छोटी पोथी के पन्ने उलट रही हूं। तुम तो जानते हो कि जब मैं अपनी जिद्द पर उतर आती हूँ तो मुझे कोई रोक नहीं सकता। आंखों की रोशनी थक कर सोने वाली है लेकिन अन्दर की रोशनी की कुछ किरणें मन के प्याले में भर रही हूं। क्या यह रोशनी कभी बीत सकती है ? कभी नहीं। दिन तो किसी न किसी प्रकार गुजर जाता है लेकिन रात इस रोशनी से लड़ने के लिए आती है, तभी भयंकर अन्धेरे में कई बार तुम्हारी तुलना अपने पति से करने लगती हूँ।" मेरी आंखों के सामने उसके पति का चेहरा अपनी सौम्यता के साथ झूल जाता है। और फिर "हां, बहुत सी

बातों में तुम दोनों एक से हो लेकिन कुछ बातों में ज़मीन-ग्रासमान का ग्रन्तर है। तुम एक ऐसे पत्थर हो जिससे उद्दाम सरिता की तरह लहराती हुई मैं टक्कर मार-मार कर बिखरने की साध लेकर जीना चाहती थी। यह एक गम्भीर समुद्र हैं जिसमें ग्रब ग्रपने ग्रस्तित्व को सौंपने की इच्छा दृढ़ हो उठी है। मेरे पति जितना मेरा ख़्याल रखते हैं तुम सौ जन्मों में भी नहीं रख सकते। वह देवता हैं ग्रौर तुम कमज़ोर ग्रादमी। यही परिस्थिति दुःखदायिनी है। मैं पछता रही हूं कि पत्नी के रूप में उन्हें वह सब कुछ न दे सकी जिस पर उनका ग्रधिकार था। ईश्वर से प्रार्थना करती हूं कि ग्रगर दूसरा जन्म मिले तो मैं उन्हें ग्रपने प्रियतम के रूप में पाऊं ग्रौर तुम्हें पति के रूप में।" यहां ग्राते ही मेरी ग्रांखें ग्रपने ग्राप बन्द हो जाती हैं जैसे उसके ग्रन्दर की रोशनी ने चकाचौंध पैदा की हो। वह ग्रागे लिखती है—"मेरी हर रात शान्त समुद्र की भांति थम सी जाती है। समय सूने तट की भाँति जकड़े रहता है ग्रौर क्षणों का ढेर धीरे-धीरे ग्रपनी चमक खो बैठता है। ऐसा लगता है कि ग्रासमान के सभी तारे टूट-टूट कर मेरे इर्द-गिर्द जमा होते जा रहे हैं। जानते हो राजू ! यही पत्थर के टुकड़े मेरे ग्रनमोल रत्न हैं ग्रगर मर गई तो सर्पिणी बनकर इन्हीं को छुपाए हुए कुंडली मार कर बठ जाऊंगी।" इस भयंकर कल्पना से मुझे रोमांच हो उठता है। सहसा पसीने से लथपथ होने के बाद फिर पत्र के ग्रक्षरों को बटोरने में जुट जाता हूँ शायद इसी ग्राशा से कि कोई विशेष सदर्भ-सूत्र मेरी पकड़ में ग्रा जाए जो जीवन का संबल बन सके। "तुमने ग्रपनी सहपाठिन के बारे में लिखा था मैं तुमसे विनती करती हूँ कि उससे शादी कर लो। तुम दोस्ती में इतना ग्रागे बढ़ चुके हो कि ग्रब पीछे लौटना ग्रमानवीय है। हमारे समाज में लड़के ग्रौर लड़की की मित्रता का कोई ग्रर्थ नहीं। बहुत दिनों से मैं एक बात तुमसे छुपाए हुए थी। प्यारे राजू ! पहले वादा करो कि तुम मेरी इस ग्राखिरी इच्छा को पूरी करोगे। कर लिया वादा ? हां ग्रब सुनो। दो महीने पहले डॉक्टर ने मुझे हॉस्पिटल से छुट्टी दे दी थी। उम्मीद है कि टी० बी० की बीमारी मौत की ग्रतल गहराई में पहूंचा देगी। फिर सब कुछ ठीक हो जाएगा। वादा करो तुम ग्रफसोस नहीं करोगे ग्रौर मेरी ग्राखिरी इच्छा ज़रूर पूरी करोगे।

मेरे राजू, रा···जू।" कड़वी हंसी हंसने के साथ पुरनम आंखों के नीले आकाश में फैलती धूप और बसस्टैंड—

'नमस्ते जी'।

'तुम यहां कैसे ?'

'इसी कालेज में नौकरी मिल गई है।' ग्लैमर-गर्ल दिखाई देने वाली सहेली ने जवाब दिया।

"बहुत खुशी हुई शर्रो !" मैंने मुस्कराते हुये कहा।

"लेकिन जनाब असली खुशी का दिन बाईस तारीख है।" उसकी सहेली ने हंसते हुए कहा।

"बाईस तारीख को क्या होने वाला है, शर्रो ! मैंने बेसब्री के साथ पूछा।

शर्रो खामोश थी। चेहरे पर कुछ मुरझायी सी लज्जा पुत गई शायद धूप निकल आने पर उड़ गई। चेहरा ऐसा हो गया जैसे नवम्बर की पीली-पीली धूप में सूखी चिनार की पत्ती हो। अगस्त की तरुण धूप जो सेबों को अरुणाई देती थी, जिसका स्पर्श होने से, शर्रो के गुलाबी कपोलों पर अबीर की सी मसलन हो जाती थी। उस रोज नदी के किनारे अकेला बैठा हुआ था कि वह आई और मेरी खामोशी को टोका······"देखिए यह अच्छी बात नहीं है आज पिकनिक के दिन आप खोये-खोये से नहीं रह सकते। आज तो हमारा साथ देना पड़ेगा।" यह सुन कर मैं चौंक पड़ा था। 'चौंके क्यों ?' सवाल सुनना ही पड़ा, "आप कहां रहा करते हैं श्रीमान् जी !' और सच बात थी मैं बहुत दूर चला गया था—"आज पिकनिक के दिन वह गीत तम्हें सुनाना ही पड़ेगा।"

"कौन सा ?"

"वही जिसमें तुमने मुझे रूप-गन्ध की सरिता कहा है। जब तुम थक जाओगे तो यही सरिता अपनी लहरों की सेज पर तुम्हें सुला लेगी।"

"तुम भी अब कविता करने लगीं !"

"क्यों नहीं ? तुम्हारा कुछ तो असर पड़ना ही चाहिए।

राजू, सच कहती हूं मैंने तुम्हें अपनी पूजा बना लिया है। अब तुम्हीं मेरे अन्तर के दीप बन कर मुझे रोशन कर रहे हो।"

"किरण, मुझे डर लगता है कि कहीं तुम वीणा की करुण रागिनी न बन जाओ।"

"तो क्या होगा! तुम उसमें स्वर-सरगम की तरह बसे रहोगे।"

और उस रोज़ का वही मज़ाक कड़वा सत्य बन गया। दूर कहीं न भाग सका। किरण की शादी हुई। शादी के बाद वह जब वापस आई तो मैंने पूछा—

"कहो कैसी हो।"

वह ठहाका मार कर हंस पडी थी और फिर थोड़ी देर बाद फूट-फूट कर रोने लगी थी। मैं उसे अवाक् देखता रह गया था।

किरण को सुन्दर और सुशील वर मिला था, कोई ऊंचा ऑफीसर। मैंने उसकी शादी में इतना काम किया कि किसी से दो मिनट बातें करने का समय भी न निकाल सका। मैंने उसे समझाया और जितना समझाया उतनी ही ज़्यादा वह रोई। फिर मुझ से न रहा गया—

"आखिर तुम रोती क्यों हो? क्या किसी ने तुम्हारा दिल दुखाया है?"

"हां।"

"किसने?"

"तुमने ..!"

"मैंने!"

"हां, हां तुमने।"

"किरण यह तुम क्या कह रही हो। तुम्हारी शादी पर जितना मैं खुश हुआ हूं उतना शायद ही कोई हुआ होगा। ईश्वर तुम्हारे सुहाग को हमेशा महफ़ूज़ रखे। तुम मुझे गलत समझ रही हो। मैं इतना नीच नहीं हूं। तुम्हें सुखी देख कर मुझे बिलकुल

जलन नहीं हुई। मुझे यक़ीन है कि तुम्हें मेरा उपहार पसन्द आया होगा—वह जूड़े के पिन।"

"बस इसी बात का तो अफसोस है", वह रोती हुई कहने लगी, "तुमने मेरे साथ मज़ाक किया है। मेरी भावनाओं से खेलकर तुम्हें क्या मिला ? मैं समझती थी कि तुम्हें मुझसे सच्चा प्रेम है लेकिन सब कुछ झूठ निकला। मेरी शादी की खबर पाकर तुम रोये क्यों नहीं ? मुझे रुलाया क्यों नहीं ? तुम में बगावत क्यों नहीं पैदा हुई ? मुझे खुशी नहीं चाहिये। मुझे जूड़े के पिन नहीं चाहिये। मुझे चाहिये तुम्हारे आंसू जो दुनियां की हर चीज़ से खूबसूरत उपहार हैं। काश ! तुम मेरी शादी पर जलते। शादी के बाद तुम्हें जिस रूप में देखने की लालसा मुझे यहां तक ले आई वह पूरी न हुई। मैंने सोचा था कि मेरा राजीव जब मुझे देखेगा तो जलते हुए सूखी पपड़ी वाले होठों से पतझर के सूने मौसम की तरह रूखी-रूखी आंखों से घृणा के भाव दर्शायेगा। वह घृणा मेरे लिए अनमोल वस्तु होगी। फिर हम एक दूसरे की जली-कटी बात सुनते-सुनाते उन परिस्थितियों पर विचार करते और अपने अनुकूल कोई राह बना पाते—"

और फिर उस दिन के बाद कमरे में पहाड़ आंसू बहाता रहा। चांद ने तकिये में मुंह छुपा लिया। अब हवा के मामूली से आघात पर इस ऊंचे देवदारु को झुकने में कोई लाज नहीं लगती। हर आघात से यह अन्दर ही अन्दर टूटता रहता है।

"अरे ! आप फिर कहीं खो गए हैं ?" उसका सवाल फिर चौंका गया। मेरे हाथ को अपनी दोनों हथेलियों के बीच रखते हुए उसने पूछा—"आप बताइए ना प्लीज़। बार बार चौंक क्यों पड़ते हैं ? अब चलिए, उठिए। सामने जो शिव जी का मन्दिर है वहां तक सैर करेंगे। देखिए, कैसा सुन्दर दृश्य है। इच्छा होती है कि कोई मुझे कविता लिखना सिखा दे। आप सिखा सकते हैं ? मेरे अन्दर कविता के भाव तो हैं पर अभिव्यक्त करना नहीं जानती। आइए, इस चश्मे का ठंडा पानी पियें ! हैं, हैं......न न ना आप न उतरिये; मैं अपने हाथों से पिलाऊंगी।"

"वह कैसे ?"

"अपनी अंजुरी में भरकर"

और शर्रो ने सचमुच अंजलि में पानी भर लिया। पहले तो मैं झिझका, लेकिन एक बच्चे की तरह शर्रो की आज्ञा को टाल न सका। शर्रो ने मेरे भीगे हुए रूमाल से अपने होठों को पोंछा।

"आप दर्दभरी कविताए क्यों लिखते हैं? बताइये न प्लीज़, आज मैं पूछ के ही रहूंगी।"

"शर्रो बड़ी किस्मत से ही दर्द मिला करता है। पहले मैं बड़ा कठोर आदमी था। सब सह लेता था। अब नहीं सहा जाता तो लिख लेता हूं। यह दुहरी टूटन है। सब कुछ दुहरा है—आंखें खोल कर देखिये तो वह बादलों से घिरा हुआ चांद, आंखें बन्द करके देखिये तो अपने साथ भी एक चांद बादलों से घिरा हुआ, टुकड़ों में टूटता चला गया है। एक टूटन बाहर, एक अन्दर। बाहर की वस्तु ही अन्दर की टूटन पैदा करती है। ऐसे ही समय अन्दर की वस्तु पास बैठ जाती है। समय रथ की चाल से नहीं चल रहा, मन के वेग से भी तेज़ चाल है उसकी।" तभी शर्रो मेरा हाथ छोड़ कर उठ गई थी।

"आप बाईस तारीख को इनकी शादी में ज़रूर आयेंगे न!" सहेली ने फिर पूछा।

मैंने शर्रो की दृष्टि में बहुत सी टोकरियां उलट दीं। शर्रो की आंखों की तरलता में वे उसी तरह डूब गयीं जैसे कंकड़ तालाब में डूब जाते हैं। कई बार कुछ लहरें उछलीं लेकिन तटों ने उन्हें समेट लिया।

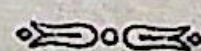
"आप बड़े बेरहम हैं। ऐसे लापता हुए कि आज मिले हैं। बेचारी शर्रो...।" फिर दो मिनट का मौन। बस भी आ गई थी। वे दोनों उस पर सवार हो कर चल दीं। दृष्टि के सामने एक धूल का गुबार उठा। मैं कहना चाहता था—"शर्रो मुझे माफ कर दो। तुमने मुझे एक मित्र की दृष्टि से देखा और मैंने मित्रता

निभाने की कोशिश की। इस बीच तुम्हारे दोस्त पर क्या गुज़री। ऐसे शुभ अवसर पर मैं कैसे तुम्हें बता सकता हूं। तुम खुश रहो और यकीन करो कि मैं ऐसी मिट्टी का बना हुआ हूं कि हर हालत में दूसरों के अनुसार ढल सकता हूं। रहा अकेलापन तो मैं उससे समझौता कर चुका हूं। एक बार तुम्हीं ने पूछा था--"आप कभी अपने अकेलेपन से ऊबते नहीं ? आप का मौन कितना भयंकर है ? इस बेमाप एकांत को कैसे जीत पायेंगे ?"

मैंने जवाब दिया था--"शर्रो मेरा हृदय निर्वासित नहीं है। मैं अकेला होता ही कब हूं। बाहर से मैं जितना एकान्त दिखाई देता हूँ उतना ही अन्दर से कोलाहलपूर्ण। वहां मैं खेलता हूँ, हंसता हूँ, रोता हूँ, रूठता हूँ और मचलता हूँ।"

आज ही तो शर्रो की शादी का दिन है। पंछी सुलगती डाल पर बेसुध होता जा रहा है। उसके बेहूदा धुएं में टंगा हुआ तनाव हड्डियों को हिलाता हुआ आत्मा में व्याप्त होता जा रहा है—समझ में नहीं आता क्या करूं ? किरण की चिन्ता की मुट्ठी भर राख पीकर सो जाऊं ? उसकी आखिरी इच्छा ! हंसिये की तरह दुहरी होती हुई हड्डियों को मानो चीरती जा रही हो......।

फिर घबराकर मैं बाहों में शून्य को कस लेता हूं।



अनकही

—दीदार सिंह

जसदीप के पड़ोस में जो लड़की रहती थी, उससे उसकी कभी बात नहीं हुई थी, लेकिन फिर भी वह उस लड़की को अच्छी तरह जानता था। घर से आते-जाते समय वह उसे देख लेता या फिर कभी वह भी अपने आंगन में खड़ी होती और यह भी आंगन में निकल आता तो दोनों एक दूसरे को देख लेते। जब कभी वह इसकी ओर देख रही होती तो यह नज़रें चुराने लगता और जब यह उसकी ओर देखता तो वह नज़रें चुरा लेती। बस दोनों में इतनी ही बोल-चाल थी।

दोनों के मकान बिल्कुल जुड़े थे। बीच की दीवार सांझी थी। दोनों मकानों के बरामदे भी एक ही ओर थे और बरामदों के आगे का आंगन तो एक ही लगता था। आंगन को दो हिस्सों में बांटने वाली दीवार नहीं बनी थी क्योंकि उसके खर्च के लिए दोनों मकान मालिकों में समझौता नहीं हो पाया था। बस कंकर पत्थरों का छोटा सा ढेर उस आंगन को दो हिस्सों में बांटता था।

जब जसदीप दूसरा मकान छोड़ कर इस मकान में आया तो आंगन में एक तरफ कूड़े-कचरे का ढेर लगा था और दूसरी ओर घास-फूस उगा हुआ था। उसने सुबह - शाम थोड़ा - थोड़ा समय

निकाल कर कई दिनों में आंगन की सफाई मुकम्मल की। चारों ओर छोटी-छोटी क्यारियां बनाईं और उनमें कुछ फूलों के पौधे लगा दिये।

उस लड़की के आंगन में घास-फूस या कूड़ा - कर्कट तो नहीं पड़ा था, लेकिन लकड़ियां और पत्थरी कोयलों के ढेर ज़रूर लगे थे। जसदीप को घर में फूल-पौधे लगाने का बहुत शौक था। वह जिस मकान में जाता वहां कुछ ही समय के बाद फूल ही फूल खिल जाते। यहां आकर भी उसने जो पौधे लगाए थे, उनकी बहुत देख-भाल करता था। समयानुसार पानी देना और गोडाई करना वह कभी न भूलता। प्रत्येक पौधा उसका मित्र था और वह प्रातः दफ्तर जाते समय सभी पौधों पर एक नज़र डालता और इसी प्रकार शाम को आकर सब का निरीक्षण करता। किसी पौधे के पत्ते इधर-उधर हुए हों या किसी की टहनी टूटी होती तो उसे झट पता चल जाता। वह पौधे लगा कर बड़ी उत्सुकता से फूल लगने की प्रतीक्षा करता।

घास-फूस और कोयला-लकड़ी के दरमियान जब रंग - बिरंगे फूल खिले तो उन्होंने पड़ोस को भी आकर्षित किया। लेकिन उन्हीं दिनों दोनों मकान मालिकों, जो कि परस्पर भाई थे, के बच्चे अपनी छुट्टियां काटने वहां आ गये। उन्होंने दिन भर आंगन में कभी क्रिकेट और कभी कबड्डी खेलना शुरू कर दिया। परिणाम यह होता कि रोज़ कभी कोई फूल टूटा होता और कभी कोई पौधा ही पांव के नीचे आकर कुचला गया होता। जसदीप दांत पीसकर रह जाता। मकान मालिक के बच्चों को भला कौन रोके? और फिर उसके फूल-पौधों को नुक्सान पहुंचाना कौन सा बड़ा नुक्सान था।

हार कर जसदीप ने मकान मालिक से कह कर आंगन के मध्य लकड़ी का जंगला बनवा दिया और इस प्रकार सांझे आंगन का स्पष्ट बटवारा हो गया। फिर जैसे खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग पकड़ता है। पड़ोस के आंगन से लकड़ी-कोयला एक ही दिन में गायब हो गया। दूसरे दिन वहाँ भी छोटी - छोटी क्यारियां बन गईं और दो दिन बाद उनमें पौधे लग गये।

जसदीप ने देखा कि वही लड़की अब रोज़ अपने बागीचे के लिए थोड़ा बहुत समय जरूर निकालती है। लेकिन अब जसदीप पर थोड़ी सी पाबन्दी लग गई। जब लड़की अपनी क्यारी की गोडाई कर रही होती तो वह अपने बागीचे में न आता, और जब वह बागीचे में होता तो लड़की बाहर न आती। दोनों ज़माने से डरते हुए एक दूसरे के सामने न आते थे। जमाने के डर के इलावा एक और सोच भी थी जो जसदीप को उस लड़की के होते हुए बागीचे में आने से रोकती थी—"वह समझेगी, मैं उसे देखने और उससे बात करने के बहाने बागीचे में आया हूँ" वह सोचता। कितनी ही देर तक तो वे एक दूसरे के नाम से भी अपरिचित रहे।

वह देखता कि जो फूल उसने लगाए हैं, वही दूसरी ओर भी लगा दिए गये हैं। "अब वह मेरा मुकाबिला करने लगी है", वह सोचता। फिर उसे ख्याल आता, "आजकल मौसम ही इन फूलों का है तो इसमें मुकाबिले की कौन सी बात है।"

बाहर क्यारियों के अतिरिक्त जसदीप ने कुछ कैक्टस, कुछ फूलों के पौधे और मनी प्लांट गमलों में लगा कर अन्दर वाले आंगन में रखे थे जो बाहर से नहीं देखे जा सकते थे। हां छत पर चढ़कर नीचे झांकने से वे दिखाई देते थे। जब कभी गमले के पौधों के साथ फूल खिलते तो जसदीप चाहता कि वह लड़की आकर उन फूलों को देखे। उसका मन चाहता कि फूल वाले गमलों को उठा कर बाहर बागीचे में रख दे। लेकिन फिर यह सोचकर न रखता, "वह समझेगी मैंने उसे चिढ़ाने के लिए ये गमले बाहर रखे हैं।"

जब उसके बागीचे में पहले फूल खिल जाते तो वह बागीचे में यही सोचकर बहुत कम आता कि वह समझेगी मुझे अपने फूलों पर बहुत गर्व है। वह कभी स्वयं और कभी दफ्तर के माली से नये से नये पौधे लगवा देता इस लिए उसके बागीचे में कोई न कोई फूल खिला ही रहता। गुलाब और मोतिये के तो उसने कई पौधे लगा रखे थे।

एक दिन बाहर का गेट कहीं खुला रह गया और एक गाय

अन्दर घुस आई। वह बहुत से पौधे खा गई। शाम को जसदीप जब घर लौटा तो उसकी नज़र सब से पहले उन पौधों पर पड़ी।

"अगर पड़ोस वाली लड़की गाय को बाहर न निकालती तो वह सारे ही पौधे खा जाती," उसी मकान के दूसरे किरायेदार की बीवी ने उसे बताया। जब वह गाय द्वारा पांव तले कुचले गए पौधों को संवारने लगा तो वह लड़की भी बाहर आंगन में आ गई। जसदीप ने उसकी ओर देखा, तो इस बार उसने नज़र नहीं चुराई।

"यह मुझे कहने आई है, तुम्हें बहुत गर्व था अपने फूलों पर, लो खा गई गाय", जसदीप ने सोचा, "यह सोचती होगी अगर मैं न गाय को बाहर निकालती तो कुछ भी न बचता। तो यह इस इच्छा से खड़ी है कि मैं इसका शुक्रिया अदा करूं। अरे, वह अब भी खड़ी मेरी ओर देख रही है—हां! इसकी आंखों में व्यंग्य या शरारत नहीं, अपितु, उदासी सी है......ओ, तो यह मुझ से सहानुभूति प्रकट कर रही है। हां सहानुभूति ही तो प्रकट करने आई है, नहीं तो मुझे ताना देने या धन्यवाद प्राप्त करने की गर्ज से कभी यों न खड़ी रहती।"

जसदीप ने एक बार फिर उस लड़की की ओर देखा। इस बार उसकी नज़रें वैसी ही थीं जैसी किसी का शुक्रिया अदा करते समय होती हैं। फिर वह भी अपनी एक क्यारी से घास निकालने लगी। घड़ी भर के लिए वे ज़माने के डर को भूल गये—और जसदीप भी अपने स्वाभिमान की बात भूल गया। वह पौधों को संवारते-संवारते जब लड़की की ओर देखता, तो वह पहले ही उसकी ओर देख रही होती, लेकिन झट नज़र फेर लेती। अब जसदीप को अपने पौधे बरबाद होने का खेद नहीं था।

यदि एक ही वस्तु को पाने के इच्छुक दो या दो से अधिक व्यक्ति हों तो वहां प्रतिद्वन्द्विता उत्पन्न होती है—लेकिन यदि एक ही शौक, एक से अधिक व्यक्तियों में हो तो वहां सहभाव उत्पन्न होता है। जसदीप और उस लड़की, दोनों को, फूल लगाने का शौक था। इसी लिए अब जसदीप की इच्छा होती कि हर सुन्दर

फूल पहले लड़की के बागीचे में खिले। उसे लगता कि वह लड़की भी यही सोचती होगी कि सबसे पहले फूल उसी (जसदीप) के बागीचे में खिले।

सर्दियों में उसने 'गुलचीन' की टहनी लाकर गाड़ दी, और वह लग गई। बाद में उसके साथ फूलों के सफेद-पीले गुच्छे लगे। एक दिन शाम को दूसरी किराएदारन ने जसदीप से 'गुलचीन' के विषय में पूछा, "भाई साहब इस फूल का क्या नाम है?"

"गुलचीन।"

"तब तो मैं ने गलत बता दिया।"

"किसे?"

"पड़ोस वाली लड़की को।"

"क्या बताया?"

"चमेली।"

"कोई बात नहीं, चमेली भी लाकर लगाऊंगा?"

किराएदारन के गुलचीन को चमेली बताने पर वह बहुत खुश हुआ क्योंकि कल ही उसने लड़की की एक सहेली को उसे 'चमेली' कह कर पुकारते सुना था। इसी लिए उसने जानबूझ कर किराएदारन से कहा था कि वह 'चमेली' भी लाकर लगाएगा। उसे विश्वास था कि किराएदारन चमेली से यह बात ज़रूर कहेगी, और उसे यह जान कर खुशी होगी कि उसके नाम का फूल भी लगाया जा रहा है।

उस दिन से उसने यह फैसला भी कर लिया कि उसके बागीचे में और कोई फूल चाहे खिले न खिले और कोई पौधा चाहे रहे न रहे लेकिन चमेली के फूल अवश्य खिलने चाहिए।

लेकिन दूसरे ही दिन उसने अपना यह फैसला बदल लिया। "वह सोचेगी मैंने उसे चिढ़ाने के लिए यह फूल लगाया है ताकि मैं फूल के बहाने उसका नाम ले सकूं", उसने सोचा, "इस प्रकार तो

यहां हर वक्त 'चमेली-चमेली' की रट लगी रहेगी जो उसे अच्छा नहीं लगेगा।"

अब वह जब भी चमेली को देखता तो 'चमेली' फूल की कल्पना करने लगता और उसकी सुगन्धि का आभास करता।

कई दिनों से उसने चमेली को बागीचे में आते नहीं देखा था। उसकी व्याकुलता बढ़ गई, लेकिन वह किसी से उसके विषय में पूछ भी नहीं सकता था। चमेली के घर में और किसी को फूलों या पौधों के प्रति लगाव नहीं प्रतीत होता था। तभी इतने दिनों से किसी ने उन पौधों को पानी नहीं दिया था। जसदीप सुबह-शाम और जब भी समय मिलता तो बाहर बरामदे या बागीचे में आकर खड़ा हो जाता और इस बात की प्रतीक्षा करता कि शायद चमेली कहीं बाहर आ जाए।

एक सप्ताह बाद उसने चमेली को देखा—उसका पिता उसे सहारा देकर टैक्सी में बिठा रहा था।

"ओह तो वह बीमार है।" जसदीप ने नि:श्वास लिया।

"यह बाड़, यह लकड़ी की बाड़, बीच में न होती—जो मैंने ही खड़ी करवायी थी, तो.. तो...। तो क्या ? मैं उसका हाल पूछने फिर भी नहीं जा सकता था। किस रिश्ते से मुझे उसका हाल पूछने का अधिकार मिलता है ?"

जब चमेली ठीक हो गई तो एक दिन अपने बागीचे में आई। जसदीप के लिए मानों सारे बागीचे में चमेली की महक फैल गई। उसे ऐसा लगा कि आज सभी पौधे फूलों से लद गये हैं। उस ने चमेली की ओर देखा—जो अपने पौधों की भांति मुर्झा गई थी। पौधे तो पानी की कमी के कारण मुर्झा गये थे लेकिन वह, वह बीमारी की वजह से कमज़ोर हो गई थी। जब जसदीप ने चमेली को देखा तो उसे अपने दिल की आवाज़ सुनाई दी, "कहो अब कैसी हो ?"

फिर उसे ऐसा लगा जैसे उसके कानों ने सुना हो, "तुम्हें क्या ? तुम कौन सा मेरा हाल पूछने आए थे।"

"मेरे दिल ने रोज तुम्हारा हाल पूछा, तुम्हारी प्रतीक्षा की।"

"मेरे दिल ने भी तुम्हें रोज़ देखा, अपनी आंखों से...... लेकिन अपने ही पौधों से उलझे हुए।"

बीच में चपटियों की बाड़, और उस बाड़ के दोनों ओर क्यारियां—एक जसदीप की, दूसरी चमेली की। जसदीप अपनी क्यारी को पानी देते समय चमेली की क्यारी को भी पानी दे जाता। लेकिन चमेली ऐसा नहीं कर सकती थी, क्योंकि उसे पानी दूर से लाना पड़ता था। जसदीप के मोतिया के पौधों को कलियां लगीं तो उसने कलियों के गुच्छे वाली एक टहनी बाड़ से चमेली की ओर कर दी ताकि वह कलियों को तोड़ ले।

"कहीं वह यह न सोचे कि मैंने उसे दिखाने के लिए टहनी उधर की है कि देखो मेरा मोतिया कैसे खिला है।" फिर भी उसने टहनी वहीं रहने दी और इस प्रतीक्षा में रहने लगा कि कब कोई उन कलियों को तोड़े। लेकिन कलियां किसी ने नहीं तोड़ीं। वह इसी लिए बागीचे में भी न आता कि हो सकता है कि उसे सामने देख कर चमेली कलियों को न तोड़े। फिर वे कलियां खिल गईं, तब भी उन्हें किसी ने न तोड़ा। फिर वे फूल चमेली की क्यारी में झड़ गये। तब जसदीप ने देखा कि वे गिरे हुए फूल किसी ने उठा लिए थे।

चमेली ने नागर बेल की बेलें लगाईं और बाड़ पर चढ़ा दीं। उन बेलों ने फैल कर जसदीप के गुलाब, गेंदे और जीनिया को अपनी लपेट में ले लिया था। वह बेलों और पौधों का यह आलिंगन देखकर बहुत खुश था।

एक दिन जसदीप ने देखा कि गुलाब की एक टहनी जिसके आगे एक फूल खिला हुआ था, चमेली की क्यारी की ओर से बढ़कर उसकी क्यारी की ओर आ गई थी। टहनी को चपटियों की बाड़ में से निकाल कर जसदीप की ओर बढ़ाया गया था, लेकिन उसने वह गुलाब का फूल तोड़ा नहीं। जब वह फूल झड़ कर क्यारी में गिर पड़ा तो उसने उसे उठा कर रख लिया। फिर उसने अपनी, क्यारी में लगी 'गुलदोपहरी' की सारी बेलें चमेली की ओर मोड़ दीं।

जब दोपहर को उनके साथ फूल खिलते तो जसदीप को ऐसे लगता कि वह फूल बेलों के साथ न लगे होकर उसके हाथों में पकड़े हुए हों और वे हाथ अनायास ही चमेली की ओर बढ़ गये हों।

एक दिन उसका गुलाब वाला एक गमला टूट गया। उस गुलाब को वह बाहर क्यारी में नहीं लगाना चाहता था क्योंकि वहां पहले से ही गुलाब के पौधे लगे थे, और जगह नहीं थी। अब वह उस पौधे को चमेली को देने का मौका तलाश करने लगा। वह चाहता था कि जब चमेली अकेली अपने बागीचे में हो, आस-पास कोई न हो तो वह पौधा उसे लगाने को दे दे। क्योंकि देखने वालों से वह बहुत सतर्क रहता था।

आखिर उसे अवसर मिल ही गया। उसने टूटा हुआ गमला चमेली की ओर बढ़ाते हुए कहा कि यह गुलाब आप अपनी क्यारी में लगा दीजिए, और अगर और गुलाब के पौधे चाहिएं तो ले लीजियेगा। यह सब वह एक ही सांस में कह गया। गमला चमेली को थमाकर उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही वह एक दम अन्दर को ऐसे भागा जैसे उसने कोई बहुत बड़ी चोरी की हो। एक वर्ष के बाद यह उनकी पहली बातचीत थी।

लेकिन बाद में उसने देखा कि उस टूटे गमले में गुलाब, तीन दिन तक चमेली के बागीचे में यों ही पड़ा रहा। "शायद वह मेरा दिया हुआ पौधा नहीं लगायेगी", उसने सोचा। "इतना तिरस्कार!"

लेकिन अगले दिन उसने देखा कि वही पौधा एक बड़े गमले में लगा दिया गया है।

सर्दियों में उसने पेन्ज़ी, और एनटोनम की पनीरी बोई। सभी क्यारियों में लगाकर भी काफी बच रही। वह इसे भी चमेली को देना चाहता था—लेकिन उसे देने का कोई उपाय न बन पा रहा था। या तो वह अकेली बागीचे में न होती, या फिर जब वह होता तो वह न होती। चमेली को बुला कर पनीरी देने का उसका साहस नहीं होता था। आखिर उसने फालतू पनीरी बाहर फेंक दी।

तब उसने एक दिन देखा कि उसकी क्यारी का गोल्डन-कप चमेली ने अपने जूड़े में टांका है। उसकी खुशी का ठिकाना न रहा।

अगली बार चमेली क्यारियों में 'जोलिया' के पौधे लगा कर फिर कहीं अलोप हो गई। सख्त गर्मी पड़ने के कारण पौधे सूखते जा रहे थे और कोई उन्हें पानी नहीं देता था। जसदीप जहां तक हो सकता—चोरी छुपे उधर थोड़ा-बहुत पानी फेंक देता। लेकिन चमेली के वहां होते हुए पानी फेंकना कुछ और बात थी। तब तो कोई यही समझता कि चमेली ने ही पानी दिया होगा—लेकिन अब तो साफ पकड़े जाने का डर था। मुर्झाए हुए पौधे देखकर उसे ऐसा लगता मानो उसके दिल से कुछ सूखता जा रहा हो, उसके अन्दर से कुछ मुर्झा रहा हो।

काफी दिनों के बाद उसने चमेली को देखा। लेकिन इस बार वह बीमार नहीं रही अपितु कहीं बाहर गई लगती थी। बागीचे में उनकी नज़रें फिर टकराईं। जसदीप की नज़र ने कहा, 'देखो तुम्हारे सारे पौधे सूख गये हैं, मुझे बहुत दुःख हुआ।'

उसे लगा जैसे चमेली की नज़रें कह रही हों—"मेरे पौधों से तुम्हें इतनी हमदर्दी?"

"हां, तुमने इतने शौक से जो लगाए हैं," उसकी नज़रें फिर कहतीं।

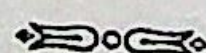
लेकिन अब चमेली पौधों के प्रति कुछ उदासीन सी प्रतीत होती थी। अपने बागीचे के प्रति भी उसमें कोई विशेष रुचि प्रतीत नहीं होती थी। उसने न तो उन मुर्झाए पौधों को पानी ही दिया और न उन्हें उखाड़ा ही।

फिर एक दिन शाम को जब जसदीप वापिस घर लौटा तो उसने देखा कि मजदूर चमेली के घर से सामान उठा कर कहीं लिए जा रहे हैं। जसदीप का दिल कांप गया। उसने आज पहली बार साहस से काम लिया और बाड़ के साथ जा कर खड़ा हो गया।

जब चमेली बाहर आई तो जसदीप ने पूछ ही लिया, "आप लोगों ने मकान बदल लिया है क्या ?"

"हां, अब हम अपने नये मकान में जा रहे हैं।" यह चमेली की आवाज़ थी जो आज पहली बार जसदीप से सम्बोधित हुई थी।

दूसरे ही दिन उस मकान में नये किराएदार आ गये। उन्होंने लकड़ी के खाली खोखे और टीन-डब्बे थे बाहर आंगन में रख दिए। दो-चार दिनों में ही वहां फिर लकड़ी और पत्थरी कोयले के ढेर लग गये थे।



काव्य-मञ्जरी

अर्थात् मैं

—मोहन निराश

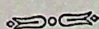
...और मैं अपना एक और नाम लिखता हूं
बहने लगता है बरसाती नालों में पिघला हुआ इतिहास
सीमा के साथ-साथ खिच जाती है लहू की रेखा
टांग देता हूं हर कंटीले तार की एक-एक नोक में अपने
हस्ताक्षर

करोड़ों लोगों में जहां कहीं
परत-दर-परत दीवारों में द्वार खोल देता हूं
फौजी बूट से उगा हुआ बे-ईमान हाथ
पानी के बदले पिघला हुआ सीसा पिलाता रहा
एक कौर भात और मछली के बदले खिलाता रहा बारूद
और मैं हर तरह का ज़हर पचाने का आदी हो गया हूं
मेरे गर्म अस्तित्व का हरेक रक्त-बिन्दु
फैलते-फैलते सूरज हो जाता है
मैं पश्चिम के अपाहज अर्थों में बैसाखियां थमाता हूँ
ताकि कुछ ऊपर उठकर देख सकें
अपने गिर्द दूर-दूर तक विस्तृत हो रहे असंख्य दायरे
अनाम लोग चल पड़ते हैं
सांवले आदमी, गंदुमी रंग के इन्सान

असंख्य घरों से बाहर निकल ग्राते हैं चौराहों पर
मैं इस जन - समूह के साथ
बन्दूक की संगीन पर
किसी की मुरदार ग्रात्मा उठाये हो लेता हूं
मैं घरों में नजर - बन्द जब जला दिया जाता हूँ
कोई रोशन-दान, कोई खिड़की वा सारा ग्राकाश खोलते
दीख पड़ता हूं
पानी में कहीं मेरी लाश तैर रही होती है
मैं कहीं पुल बांधने में लगा होता हूँ
जिसे बारूद से उड़ा कर
फौज पीछे हट गई होती है
संगीनों पर उछाला जाता हूँ, कट जाता हूं
ग्रौर मैं उस समय किसी खूंटी पर लटका कोई शरीर पहन
रहा होता हूं
मैं उतरती हुई हर खाकी वर्दी पर ग्रपने नाम से
मन - गढंत मृत्यु - तिथियों में बन्धी तकदीर को झुठलाता
हुग्रा
लिख देता हूं नई इबारत
मैं उस का हर वाक्य नंगा करके इश्तिहारों की सूरत
चौराहों पर धरी मेज़ों पर
टूटे कलीसे के स्तून पर
बुद्ध की खंडित मूर्ति की पीठ पर
उजड़ी मस्जिद के मिम्बर पर
हर भागते फौजी के चेहरे पर चिपकाता रहा
ताकि हर कोई उस को पढ़ने के बाद उतार कर फाड़ डाले
मैं ग्रपनी खाल से बाहर ग्राये हर ऐसे ग्रादमी के
माथे में कील ठोक कर गुज़रता हूं
उस के कान में कहता हूं—
'मरो, मसीहा हो जाग्रो।
काले परनाले का पानी पीने से इन्कार करो
कर्बला की मिट्टी ग्रौर सुर्खी चाहती है'

प्रत्येक लावा में डुबोई हुई अपनी हड्डी से वातावरण पर लिख
देता है;

'ओ, तुम जो युद्ध-क्षेत्र से आये हुये कबंध हो
अथवा हो किसी तश्तरी में पेश किया सिर !
तुमने अपना हर ख्याल ताज़ा रखने के लिए फ्रिज में बंद रखा
जो बाहर आते ही बासी निकला,
इस तुम्हारी राजनीति में कसर की गांठें पड़ गई हैं,
जीवित रखने के लोभ में क्यों इसे ऑक्सीजन देते हो ?
जानते नहीं, यह तुम्हारी सारी सांस पी जाने के बाद भी
मुर्दा निकलेगी,
मरने दो इसे अपनी मौत
ताकि तुम अपनी शव-यात्रा में शामिल होने के लिये
कुछेक दिनों तक जीवित तो रह सको और
बन्द कमरे में बैठे तुम फिलहाल
अपने मुखौटों से मशवरा करते रहो—
मेरा नाम क्या हो ?
मैं कहां रहूँ ?
कौन सी भाषा बोलूं ?—
और तुम्हारे निर्णय के बावजूद भी मैं
अपनी इच्छानुसार जीवित रहा
घूमता-फिरता हूं निर्बाध
बोलता हूँ जो तुम्हें कुफ्र लगता है।
नाम अपना रखा है मैं ने :
'हम' अर्थात्
घरों से बाहर आये लोग
अर्थात् मैं
अर्थात्
काले कागज़ पर लिखा गया खून का सूरज।



बेरोज़गार बादल

—जवाहर रैणा

आसमान पर
काले बादलों के आने की सूचना
मेरे दिल को दहला देती है—
बार बार !

कंक्रीट के महल की
एक ऊंची दीवार
बौछार से भर जाती है
और गलने लगते हैं
दीवार से चिपटे हुए
नये और पुराने
इश्तिहार !

कनपटी से
कमीज़ के कालर की ओर
ढलक पड़ती है
एक मटीली धार।

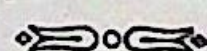
हर बार
इन्द्रधनुष के रंगों ने

मुझे
परेशान किया है
और
इसकी सतरंगी रोशनी
मुझे
बौनेपन के बोध से नहला देती है।

लाल बनफशी रंगों के आर पार
सुलगती हुई आंच
मेरे अन्तर में
कहीं कुछ पिघला देती है
और चारों ओर जमने लगता है
घना, काला
कोलतार !

मरते हुए सूर्य ने
हमेशा
उम्मीद भरी आवाज़
मुझे
बेतार द्वारा भेजी है
और
मुझे
काली ऐनक उतारने पर
मजबूर किया है,
ताकि मैं
झांक सकूं
कंक्रीट की दीवारों के अन्दर
और पढ़ सकूं
कोलतारी सड़क की कहानियां
गलते हुए इश्तिहार ओढ़ कर
बाजारों में भागता फिरूं

लोग कहें—
यह नौजवान पागल है
मैं कहूं
अरे !
वह उमड़ा हुआ बादल है—
वह भी है बेकार
मैं भी हूं बेकार ।



गीत

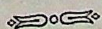
—शंकर शर्मा 'पिपासु'

जो कुछ तुम ने दिया दिया
सो कुछ मैं ने लिया लिया

इस पर मेरा दोष है क्या
तेरा मुझ पर रोष है क्या
पाप पुण्य का अधिकारी
मुझ को ही क्यों किया किया
जो कुछ तुम ने दिया दिया
सो कुछ मैं ने लिया लिया

मुझ अपने में पंच विकार
भरे तुम्हीं ने कर उपकार
तन का चोला जन्म जन्म का
इसी लिये तो सिया सिया
जो कुछ तुम ने दिया दिया
सो कुछ मैं ने लिया लिया

तीन लोक से विलग यहां
तीन काल में सहज कहां
जब तक तेरी कृपा न हो
व्याकुल होगा हिया हिया
जो कुछ तुम ने दिया दिया
सो कुछ मैं ने लिया लिया



उलझन

—डॉ० गंगा दत्त 'विनोद'

चितवन के धागों में मन पंछी
मेरा क्यों तुम बांध रही हो।

मेरी सीमा धरती - अम्बर
मैंने धरना सिर पर भूधर
जलते जग की पीड़ा को
हंस - हस लेना अपने ऊपर
नीले - पीले घूंघट से बेकार इधर क्यों झाँक रही हो।
चितवन के धागों से मन-पंछी मेरा क्यों तुम बांध रही हो।।

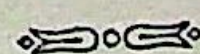
मेरा पथ ऊंची पगडण्डी
जो गर्वीली और घमण्डी
मेरे स्वर में शत शत ज्वाला-
मुखियों की भीषण रण चण्डी
वज्र-पुरुष को कोमल पंखुड़ियों की माला में क्यों बांध रही हो।
चितवन के धागों में मन - पंछी मेरा क्यों तुम बांध रही हो।।

सुख - सुमनों से दूर रहा हूं।
कण्टक - वन में घूम रहा हूं।
आग-पवन की आंख मिचौनी
से युग युग से खेल रहा हूँ।

मुस्कान मधुरता मधुशाला में बार बार क्यों डाल रही हो।
चितवन के धागों में मन-पंछी मेरा क्यों तुम बांध रही हो।।

मुझको करना युग - परिवर्तन
उथल पुथल का भीषण नर्तन।
अस्तगत जग मानवता का
फिर से करना प्रत्यावर्तन
मखमल जंजीरों से मेरी उर धड़कन क्यों बांध रही हो ?
चितवन के धागों से मन-पंछी मेरा क्यों तुम बांध रही हो।।

मैं पीता हूं विष का प्याला
तेरी साथिन साकी हाला
मैं जान हथेली पर रख कर
पहन रहा नर मुण्डों की माला
मरघट वासी मुझ को क्यों रति शय्या पर ज्यों हांक रही हो।
चितवन के धागों से मन-पंछी मेरा क्यों तुम बांध रही हो।।



कामिनी और निर्झर

—चन्द्र कान्त जोशी

स्रोत तीर पर इक तरुणी
झर झर नीर बहाती थी,
नयन कोष करती रीते
मोती से ढलकाती थी।

निर्झर का मधुर मधुर जल
खारी बून्दों से हिल - मिल
बहता करता—कल कल कल
रवि किरणों में ढल मल ढल।

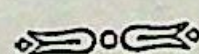
एक बिन्दु हृदय से निकला
दूजा गिरी की छाती से
एक दग्ध विरहानल से
दूसरा असुर - घाती से

दोनों की पीड़ा अदम्य
दोनों का उर रम्य रम्य
फिर भी कैसा अन्तर है
इक मीठा, इक कटुतर है।

वह चाह रही प्रिय दर्शन
निर्झर का सरिता में मन
वह शून्य लीन शोक ग्रस्त
निर्झर है नन्दित नर्तित।

एक मग्न निज पीड़ा में
दूजे का मन क्रीड़ा में
एक एकान्त सेवा रत
निर्झर के साथी शत् शत्

कामिनी वासना में तप
खोती प्रति पल रूप मधुर।
किन्तु स्रोत पर सेवा रत
श्रवण मधुर बहता अजस्र।



गीत

—मनसा राम 'चंचल'



वह प्यार मिटा दो धरती से मिलने की कसक न हो जिस में।

जग कहता आया इक युग से
यह प्रेम सदा यों चलता है।
इक मिटता है तिल तिल जल कर
इक सदा उसे यों छलता है।
यह प्रेम अगर हो अन्तर का,
सब तोड़ पाश वह बढ़ता है।
ये विघ्न-बाध सब जगती के, अवरोध तनिक न हो जिस में,
वह प्यार मिटा दो धरती से, मिलने की कसक न हो जिस में।

ये उपवन लुटते ही आए,
ये पुष्प सदा मिटते आए।
ये भ्रमर, लता औ' कुंज सभी—
इन पुष्पों को छलते आए।
पर प्रेम न हो जब पर्णों को,
गुंजार व्यर्थ सी जाती हो।
वह पुष्प उठा दो उपवन से, खिलने की तड़प न हो जिस में,
वह प्यार मिटा दो धरती से, मिलने की कसक न हो जिस में।

जब साथी दूर किनारा करके
जीवन यापन करता हो,
और प्रियतम एकाकी रह कर,
नि:श्वास मौन यों भरता हो।
औ' अश्रुमाल जब लुटती हो,
औ' जीवन में अनुराग न हो।

वे शब्द मिटा दो पुस्तक से, इक द्रवित फफक न हो जिस में,
वह प्यार मिटा दो धरती से, मिलने की कसक हो जिस में।

ज़ब जगती रो-रो थक जाए,
या आंख उमड़ कर पक जाए।
औ' उठती आन्धी रह-रह कर,
इस अन्तस्तल में रुक जाए,
या जीवन खेना दुष्कर हो,
औ' भार वेदना पुष्कर हो।

तब आग लगा दो, मधुशाला को, पावन चषक न हो जिसमें,
वह प्रेम मिटा दो धरती से, मिलने की कसक न हो जिस में।



अचूक सूरज

—पृथ्वी नाथ पुष्प

समय कड़ा है
सुघोर
निर्दय
न जाने क्या देखना अभी है
अदेखा कोई करे भी कैसे
कोई भला इससे कैसे भागे

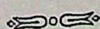
निगल रहा है अबाध गति से
घना - अंधेरा
अभेद्य कैसा
न दाहिने है न बायें कुछ भी
प्रकोप काला है शून्य जैसा
विषम कि सम हैं
टटोलना हाथ से भी मुश्किल

जमीं ने ओढ़ी
रज़ाई काली
और आस्मां ने पहन लिया
रात का लबादा

कहां का चंदा
न जाने किस ओर
रह गया है कहीं भटक कर
सभी सितारों को नाग काले निगल गये हैं

सुयोग से झुटपुटा ही होता
मिला न वह भी
कहीं पै कुछ आंख को तो सूझे
चुपी में डूबा
तना - तना सा
समां भयानक
हवा है बेदम
पहाड़ियों को जकड़ चुका है कठोर लक़वा
डरे हैं नाले
दरख्त सहमे
शिशिर डसे है
तुषार के शर नुकीले
हड्डी को बेधते - से

तथापि
कितनी प्रबल है गर्मी
यह ज़िंदगी की
कि वक्ष में धड़कनें अभय
चौकड़ी भरे हैं
सुनो तो अन्तर से आ रही है
पुकार सुन लो :
सजीव कर दो
दिये की लौ को
कमर कसो
उग रहा है ताज़ा अचूक सूरज !



चिन्ता मत कर

—सुतीक्ष्ण कुमार 'आनन्दम'



चिन्ता मत कर
मत कर चिन्ता !

युद्ध चाहे क्रुद्ध कितना हो
क्रूर कितना हो, घोर कितना हो,
दीर्घ हो चाहे कितना भी
प्रलयकारी हो विनाशकारी हो भले ही
परन्तु
नहीं मेट सकता
एक भी संस्कृति
एक भी सभ्यता
[बदल जाए तो क्या
मूल बीज किन्तु
निहित रहता है ।]

*साक्षी दे रहा इतिहास
रचा गया था महायज्ञ
एक एक कर हूति हुए थे

*श्रीमद्भागवत—अंतिम अध्याय

नाग - दलों के दल
तथापि
शेष रहा था एक
वह तक्षक
नई सृष्टि का रचयिता
अर्थात्
आदि कहलाया !

अरे—
कल ही की है बात
छिड़ा था महाभारत
लाल हुई थी
भूमि कुरुक्षेत्र की
त्राहि त्राहि मची थी
हाही हाही मची थी हाहाकार
किन्तु—
टिटिहरी के चिड़ौले
मरना तो विलग
आहत तक न हो पाए !

चाणक्य चले थे करने
कुश - वंश का अंत,
सिकन्दर निकला था
विश्व विजय को भावी मान,
रह गए परन्तु
मंझदार में सभी
बड़े बड़े मानी योद्धा
हिटलर और हलाकू,
मुसोलिनी का भी हुआ था
गर्व - चूर !

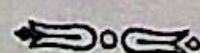
परसों की देखो बात—

सागर - मथन से
मिला था अमृत निःसंदेह
किन्तु
विष - घट भी लगा था हाथ !
और—
विष - पान - कर्ता सभी
क्या पा गए मरण ?

शिव ने धारण किया गरल
नील - कण्ठ कहलाया
परन्तु
शव न बन सका !

ये संस्कृतियां
ये सभ्यताएं
शिव मंत्र की पूजक हैं
अंत इन का
है असम्भव,
युद्ध इनका क्या बिगाड़ें
युद्ध इनसे बिगड़ते हैं;

ये गिरती हैं
तो शिव गिरता है
पर—
न शिव होता है शव
न ये होती हैं धरावर
चिन्ता मत कर,
मत कर चिन्ता !



आंसू

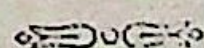
—जानकीनाथ कौल 'कमल'

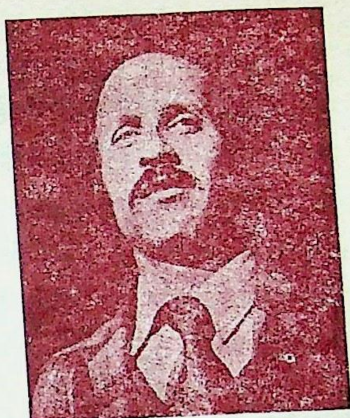
आ ! हा ! आज उमड़ती नदिया
ऐसा स्रोत बहाती
बहते बहते जीवन तल पर
शीतल ताल बजाती आभास

हृदयस्थल से बहता झरना
अश्रु नदी में गिरता
गिर कर जीवन-आञ्चल को
किन ध्वनियों से भरता? अनुभव

मैं तो अंधियारी कुटिया में
जीवन संग थी रोती
रो कर आंखें खोलीं देखा
बिखर पड़े हैं मोती प्रत्यक्ष

ये तो आंसू-बूंद नहीं हैं
सुख-माला के मोती
जिनके अनुपम हार पहिन कर
मैं हूं सुख से सोती परिणाम





श्री शशिशेखर तोषखानी हिन्दी साहित्य की नव्यतम प्रवृत्तियों के सुप्रतिष्ठित लेखक हैं। कश्मीर की साहित्यिक गतिविधियों में आप का विशिष्ट योगदान रहा है। नई कविता के सशक्त हस्ताक्षर श्री तोषखानी शोध में भी गहरी पैठ रखते हैं।

●



डा० ओम प्रकाश गुप्त मूलत: कवि हैं किन्तु कविता के साथ साथ वे अन्य विधाओं में भी रचना करते हैं। 'युद्ध और शांति' 'सागर के तीर' 'लहर लहर हर नैया नाचे' और 'हिन्दी डोगरी पर-प्रत्यय' शीर्षक पुस्तकें छपवा चुके हैं। अकादमी के लिए डोगरी लोक-गीतों का पद्यमय हिन्दी अनुवाद 'थिरके पत्ता पीपल का'— इनकी विशिष्ट उपलब्धि है।

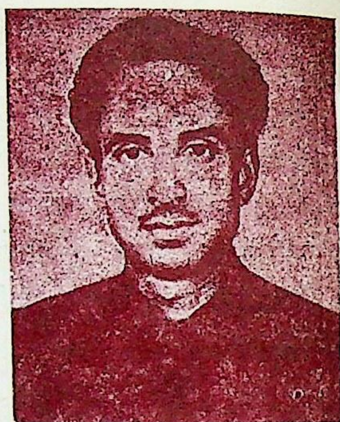
●



डोगरी लोक साहित्य पर प्रो० शक्ति शर्मा ने विशेष काम किया है। 'त्रिवेणी' और 'स्याढ़ां' शीर्षक से डोगरी में इनकी दो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। डोगरी रिसर्च इन्स्टीच्यूट निबन्धावली 1966–70 की सम्पादिका रही हैं।

●

प्रो० सत्यपाल शास्त्री हिन्दी-डोगरी के जाने माने विद्वान हैं। सम्प्रति आप डोगरी लोक साहित्य पर हिन्दी में एक विशद् ग्रन्थ की रचना में व्यस्त हैं। इनके लेख भारत की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं।



डोगरी भाषा एवं साहित्य के उन्नयन के लिए अनथक परिश्रम करने वाली डॉ० वेद कुमारी हिन्दी-संस्कृत की सुप्रतिष्ठित विद्वान हैं। आपकी डोगरी, हिन्दी तथा अंग्रेज़ी में अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। शोध की दिशा में इनकी रुचि सर्वाधिक प्रकट हुई है।



23-5-42 को श्रीनगर में जन्म लेने वाले अवतार कृष्ण राजदान प्रकृति की क्रूरता का शिकार बनकर एक अपाहिज का जीवन बिताने के लिए विवश हैं। इन्होंने अपने जीवन को हिन्दी एवं कश्मीरी साहित्य की श्रीवृद्धि के लिए अर्पित कर देने का निश्चय किया है।



एक लम्बे अरसे तक कवि रहने के उपरान्त डॉ० विद्यानाथ गुप्त ने आलोचना के क्षेत्र में प्रवेश किया और उसी में रम गए। आपका जन्म 23-7-1923 को मीरपुर में हुआ। 'हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना' नामक शोध-प्रबन्ध प्रकाशित करवा चुके हैं। कविता के क्षेत्र में 'मेरे गीत अधूरे हैं' का अपना स्थान है।



'कश्मीरी शैव-दर्शन' के लेखक श्री बद्रीनाथ शास्त्री 'कल्ला' कश्मीर के सुप्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक हैं। आपने संस्कृत एवं कश्मीरी भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया है। सम्प्रति आप कल्चरल अकादमी की कश्मीर-शाखा में सम्पादक पद पर आसीन हैं।



डॉ० संसार चन्द्र का जन्म 28-8-1917 को मीरपुर में हुआ था। आप हिन्दी-संस्कृत के अधिकारी विद्वान के रूप में भारत भर में प्रसिद्ध हैं। हास्य-व्यंग्य लेखक के रूप में भी आपने पर्याप्त यश अर्जित किया है। आपकी 26 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं जिन में से अधिकांश पुरस्कृत भी हुई हैं।



हिन्दी-उर्दू के सुप्रसिद्ध कवि तथा कहानीकार श्री ज्योतीश्वर पथिक का जन्म 8-10-1974 को जम्मू में हुआ ; 'कोमल-कोमल गीत', 'रुनझुन' इत्यादि उनकी सुविज्ञापित कृतियां हैं।



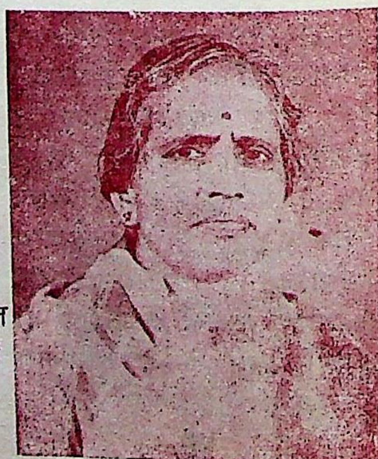
●

निर्मल विनोदी जम्मू के उन युवा साहित्यकारों में से हैं जिन्होंने थोड़े से समय में बहुत कुछ प्राप्त कर लिया है। कहानियों पर इनकी पकड़ इनके उज्ज्वल भविष्य की द्योतक है। अभी इन की कोई भी स्वतंत्र पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई है।



●

सीमावर्ती प्रदेश—पुन्छ—में एक लम्बी अवधि तक रहने के कारण श्रीमती राज भल्ला ने वहां की सम्वेदनाओं को आत्मसात किया है और अपनी कहानियों में मुखर किया है।



●

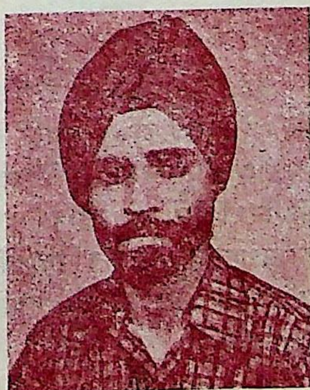
हिन्दी-कश्मीरी के सुपरिचित कथाकार श्री हरिकृष्ण कौल की हिन्दी में दो पुस्तकें 'इस हम्माम में' तथा 'गद्य गरिमा' नाम से प्रकाशित हो चुकी हैं। उनकी कहानियां अखिल भारतीय स्तर की पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर इन्हें दूर-दूर तक विज्ञापित करने का दायित्व निभाती रही हैं।



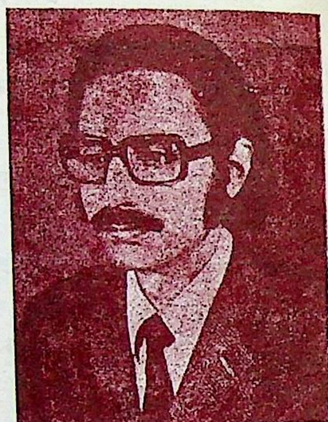
'दर्पण बन गया इतिहास', 'यह आस्था यह अंधेरा', 'सात कहानियां' और 'पीले चांद के शहर में' के लेखक डॉ० अयूब प्रेमी का जन्म 22 जुलाई 1936 को हुआ था। आपकी रचनाओं में 'रोमांटिक बोध' पूरे यौवन पर दिखाई देता है।



रेडियो-कश्मीर, जम्मू में सहायक-सम्पादक के पद पर कार्यरत श्री दीदार सिंह की कहानियों में एक सहजता होती है। इनकी कहानियां अपने युग की मानसिकता में रची-बसी हैं। 'धुंधलके' शीर्षक से इनका एक कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुका है।



21 मार्च 1934 को श्रीनगर में जन्मे श्री मोहन निराश जम्मू-कश्मीर के जाने माने हिन्दी कवि हैं। 'कृष्ण मेरा पर्याय' शीर्षक से इनका एक स्वतंत्र काव्य - ग्रंथ प्रकाशित हो चुका है जिसे अकादमी ने पुरस्कृत भी किया है।



●

राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय तनावों के बीच अपनी कविताओं को वाणी देने वाले श्री जवाहर रैणा की कविताओं में एक अछूतापन है—एक नयापन जो उन्हें अपनी कविताओं के सन्दर्भ में विशिष्ट बनाता है।



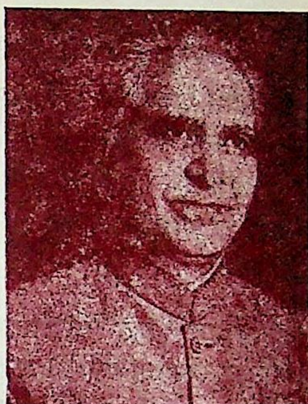
●

'मति मन्थन' और 'उल्लोल' के रचयिता डॉ० गंगा दत 'विनोद' की कविताओं में आज भी परम्पराओं को जीवित देखा जा सकता है। आप कविताओं के अतिरिक्त शोध में भी पर्याप्त रुचि लेते हैं।



●

जम्मू-कश्मीर के सुप्रसिद्ध विद्वान श्री पृथ्वी नाथ 'पुष्प' का जन्म 16-10-1917 को श्रीनगर में हुआ था। 'आधुनिक हिन्दी पद्यपरिचय' नाम से आप की पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है।



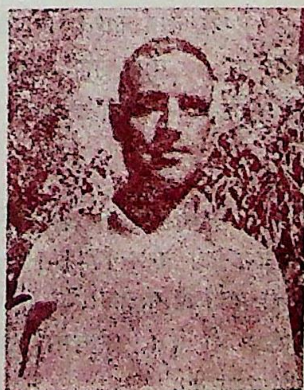
●

लगभग आध-दर्जन पुस्तकों के प्रणेता श्री सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम जम्मू में नई कविता के सशक्त हस्ताक्षर हैं। आपकी कविताएं समाज की आंतरिक विसंगतियों को उजागर करने में पेश-पेश रही हैं।



●

'शैव दर्शन' के विद्वान श्री जानकी नाथ कौल 'कमल' का प्रकृति के प्रति गूढ़ अनुराग है। 19-6-1917 को श्रीनगर में जन्मे श्री 'कमल' का एक कविता संग्रह 'विक्षिप्त वीणा' नाम से प्रकाशित हो चुका है।



●

परम्परागत काव्य के अधिकारी विद्वान डॉ० निज़ामुद्दीन ने हिन्दी भाषा एवं साहित्य की विविध प्रवृत्तियों का अनुशीलन किया है तथा अपनी उपलब्धियों को रेखांकित करते हुए अनेक लेख लिखे हैं। सहज एवं सरल भाषा में अपने भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करने में आप सिद्धहस्त हैं।

●

पं० दुर्गा दत्त शास्त्री जम्मू के सीनियर लेखकों में से एक हैं। आदर्श की स्थापना इन की रचनाओं का मुख्य स्वर है। समय के साथ अपने को बदलने की चेष्टा करते हुए शास्त्री जी कितना बदल पाये हैं इसका परिचय 'परित्यक्ता' से मिल सकता है।

●

आम आदमी से जुड़कर उसकी बात को कहने की चेष्टा करने वाले जगमोहन पारिवारिक संस्थाओं के प्रति एक ऊब का भाव रखते हैं। रिश्तों का उनके अनेक धरातलों पर पोस्टमार्टम करना इनकी कहानियों की विशेषता कही जा सकती है।

●

एक लम्बे अरसे से हिन्दी काव्य की सेवा कर रहे श्री शंकर शर्मा पिपासु जम्मू के वयोवृद्ध हिन्दी कवियों में से हैं। 'सीमा का पंछी' तथा 'दो चांद' नामक कृतियां प्रकाशित करवा चुके हैं

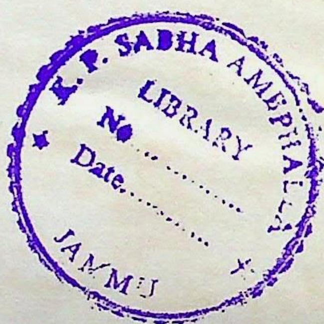
●

श्री चन्द्र कान्त जोशी का जन्म 28-2-1928 को जम्मू में हुआ था। दुःख सुख' नाम से आप का एक कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुका है। आप जम्मू के सुप्रसिद्ध हिन्दी कवि हैं।

●

जम्मू-कश्मीर के सुप्रतिष्ठित हिन्दी कवि श्री मनसा राम शर्मा 'चंचल' का जन्म 17-1-1928 को तहसील हीरा नगर में स्थित गांव गुढ़ा मुन्डेआं में हुआ था। श्री चंचल कवि-कहानीकार तथा एकांकी लेखक भी हैं। 'सुषमा' नाम से आपका काव्यसंकलन प्रकाशित हो चुका है।

●


K. P. SABHA AMEERAKADAL
LIBRARY
No............
Date............
JAMMU





J & K Academy of Art, Culture & Languages, JAMMU.

SPACEAGE